# इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ४ अंक ३ आश्विन मास कलियुगाब्द ५११३ अक्तूबर, २०११

**मार्गदर्शक :**
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

**सम्पादक :**
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

**सह सम्पादक**
चेतराम गर्ग

**सम्पादक मण्डल :**
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
प्रो० सतीश चन्द्र

**टंकण एवं सज्जा :**
अश्वनी कालिया

**मुख पृष्ठः**
मोढ़ेरा, गुजरात का कलात्मक सूर्य मन्दिर

**सम्पादकीय कार्यालय :**
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

**मूल्यः**
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

## अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

नाम प्रमाण

| | | |
|---|---|---|
| भारत देश का नामकरण | डॉ० वासदेवशरण अग्रवाल | ३ |

संवीक्षण

| | | |
|---|---|---|
| हमारे देश की वाचिक परम्परा | डॉ० विद्या निवास मिश्र | ७ |
| ब्रिटेन में हिन्दू संस्कृति का व्यापक प्रभाव | पुरुषोत्तम नागेश ओक | ११ |

आचार्य दर्शन

| | | |
|---|---|---|
| अपनी संस्कृति की रक्षा कीजिए | पं. श्रीराम शर्मा आचार्य | १६ |

स्थान वृत्त

| | | |
|---|---|---|
| सोलासिंगी धार के सिद्ध स्थान | डॉ० ओम दत्त सरोच | १८ |
| भारत की प्रथम नगरपालिका वाला नगर | ललित शर्मा | २३ |

यात्रा वृत्त

| | | |
|---|---|---|
| पालनपुर और आस-पास | चेत राम गर्ग | ३० |
| संस्थान की गतिविधियां | | ४८ |

# सम्पादकीय

## भारत माता की जय

**महान्** *दार्शनिक एवं प्रखर राष्ट्र चिन्तक परम पूज्य माधवराव सदाशिवराव गुरु गोलवलकर जी ने अपने एक उद्‌बोधन में कहा था– किसी व्यक्ति या समाज को जब आत्मविस्मृति हो जाती है, तब वह अपनी विद्या, कला, शक्ति आदि सब कुछ खो बैठता है। समुद्र लांघने का जब अवसर आया, तब हनुमान जी एक ओर चुपचाप बैठे थे। वे अपना सामर्थ्य भूल गये थे। जब जामवन्त ने उन्हें जागृत किया, तब वे विशालकाय बने और उड़ान के लिए सिद्ध हुए। वैसी ही बात अर्जुन की भी हुई थी,"मैं कौन हूं और मेरा कर्तव्य क्या है?" इस बात को वह भूल गया था। भगवान कृष्ण ने उन्हें आत्मज्ञान कराया, तभी वह युद्ध कर सका और पराक्रम दिखा सका।*

*विगत दिनों स्वामी रामदेव और अण्णा हजारे जी ने भारत की राष्ट्र शक्ति के पराक्रम को जगाया है। काला धन और भ्रष्टाचार उन्मूलन एवं सशक्त जन लोकपाल बिल के पक्ष में इनके उच्च श्रेष्ठ अभियान को विफल बनाने में, भले ही शासनतंत्र ने घोर अलोकतान्त्रिक हथकण्डे अपनाए, लेकिन आत्मविस्मृति से उभरी समर्थ राष्ट्र शक्ति ने शासन को नतमस्तक होने पर विवश करवाया। अण्णा हजारे ने सात्विक राष्ट्रीय आकांक्षा से* ***भारत माता की जय, वन्दे मातरम्, इनकलाब जिन्दाबाद*** *के जयघोष के साथ जो आह्वान किया, उससे सारा देश एक हो कर उठ खड़ा हुआ। इससे सत्ताधीशों तक राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के काव्य का यह संदेश पहुंचा–*

***जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है,***
***दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,***
***सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।***

*इसी का परिणाम है कि अण्णा हजारे के प्रस्तावित जन लोकपाल विधेयक की प्रमुख मांगों को संसद ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर के संसदीय स्थायी समिति के पास भेजा। लोक शक्ति की इस ऐतिहासिक विजय में* ***भारत माता की जय*** *का जयघोष चरितार्थ हुआ है। शुद्ध विचार, शुद्ध आचार, निष्कलंक जीवन, त्याग और नीलकण्ठ शंकर भगवान् के विषपान की भांति सद्‌कार्य के लिए अपमान के घूंट पीना– इन पांच सिद्धान्तों को अपनाना, क्रांन्तिवीर राष्ट्र सन्त अण्णा हजारे ने लक्ष्य सिद्धि के लिए आवश्यक बतलाया। अण्णा द्वारा प्रबोधित, भारत की ऋषि परम्परा से पोषित ये आधारभूत शाश्वत सिद्धान्त राष्ट्र जीवन के व्यावहारिक धरातल पर व्याप्त हों तो* ***भारत माता की जय*** *का उद्‌घोष सकल विश्व में निरन्तर सत्यं शिवं सुन्दरम् की कल्याण भावना के साथ विस्तार पाएगा।*

*विनीत :*

*विद्या चन्द ठाकुर*

✍ नाम प्रमाण

# भारत देश का नामकरण

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

वायु पुराण के अनुसार हमारे देश का नाम भारतवर्ष है, और इसमें बसने वाली जनता का नाम भारती प्रजा है। भारतवर्ष का भौगोलिक विस्तार समुद्र के उत्तर और हिमवान् के दक्षिण में कहा गया है

***उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत्।***
***वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा।।***

(वायु. ४५–७५)

इसी पुराण के एक अन्य श्लोक में कुमारिका अंतरीप से लेकर हिमालय में गंगा के प्रभव-स्थान तक फैला हुआ भू-प्रदेश भारतवर्ष में सम्मिलित माना गया है — ***आयतो ह्याकुमारिक्यादागंगाप्रभवाच्च वै।*** ४५/८१।

पूर्व के महोदधि[१] और पश्चिम के रत्नाकर[२] नामक दो समुद्रों का जहां संगम है उसके समीप ही कुमारी अंतरीप है, जहां तपश्चर्या में निरत कुमारी पार्वती गंगा के प्रभवस्थान हिमाचल के देवदारु वृक्षों की वेदिका में समाधिस्थ भगवान शंकर के ध्यान में अहर्निश लीन रहती हैं। देश के उत्तर-दक्षिण के बिन्दुओं में सतत् चारिणी विद्युत-शक्ति की एक अत्यंत रमणीय कल्पना शिव और पार्वती के इस रूपक के द्वारा ही की गई है। देश की भूमि केवल पार्थिव परमाणुओं की राशि तो है नहीं, उसमें एक चेतन प्राणधारा जो कुंडलिनी की तरह सजग है, ओतप्रोत है। इसका अर्थ यह है कि उत्तर से दक्षिण तक देश के किसी भाग में होनेवाली घटना राष्ट्र के समस्त चैतन्य का स्पर्श करती है। दक्षिण में फैले हुए समुद्रों की अपार जलराशि के ऊपर कुमारिका अधिष्ठात्री देवी की तरह भारतवर्ष के साथ उन समुद्रों के सम्बन्ध को विज्ञापित करती है।

उत्तर में गंगा का उद्गम भारत की स्वाभाविक उत्तरी सीमा है। हिमालय में गंगा के उद्गम और धाराओं की खोज तथा नामकरण प्राचीन भारतीय भूगोल वेत्ताओं के विलक्षण विक्रम का प्रमाण है। गंगा, अलकनंदा, भागीरथी, मंदाकिनी और जाह्नवी यद्यपि लोक-साहित्य में पर्यायवाची समझी जाती हैं, तथापि ये नाम हिमालय में गंगा की जलद्रोणी को सींचने वाली पृथक्-पृथक् धाराओं के हैं। इनमें से जाह्नवी गंगा की सबसे उपरली धारा है। वह हिमालय के भी उस पार जंस्कर पर्वत-शृंखला से आई है और उसका उद्गम टिहरी रियासत का सबसे ऊपरी छोर है। वर्तमान भारत की उत्तरी सीमाएँ ठीक वहीं तक विस्तीर्ण हैं। इसलिये कह सकते हैं कि जहाँ तक गंगा है वहीं तक उत्तर में भारतवर्ष है।

पुराणों ने निरुक्तशास्त्र की दृष्टि से भी देश के नाम की व्याख्या करने का प्रयत्न

१. आधुनिक बंगाल की खाड़ी का पुराना नाम महोदधि और २. अरब सागर का पुराना नाम रत्नाकर है।

किया है। मत्स्य और वायु पुराण के अनुसार :

*भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते।*
*निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम्।।*

(वायु. ४५/७६)

'प्रजाओं का भरण-पोषण करने के कारण मनु की एक संज्ञा भरत कही गई है। इस शब्द-व्युत्पत्ति को ध्यान में रखते हुए यह देश भारतवर्ष कहलाता है।' इसका अभिप्राय यह है कि मनु प्रजापति ने सबसे पहले धर्म और न्याय की व्यवस्था स्थापित की। उस व्यवस्था के द्वारा प्रजाओं के भरण-पोषण का सिलसिला शुरू हुआ। इस भरणात्मक गुण के कारण मनु भरत कहे गए, और जिस भूखंड में मनु की संतति ने निवास किया और मनु की पद्धति प्रचलित हुई उसका नाम भारतवर्ष पड़ा। इस व्याख्या की यह विशेषता है कि इसमें देश के नामकरण को त्रैकालिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न है। अथर्ववेद के पृथ्वी-सूक्त में भी कहा गया है कि यह मातृभूमि मनु की संतति के बे रोक-टोक (असंबाध) बसने का स्थान है।

किन्तु भरत और भारत इन दो शब्दों का और भी प्राचीनतर मूल ऋग्वेद में है। ऋग्वेद-काल में भरत आर्यों की एक प्रतापी शाखा या जन की संज्ञा थी, जो सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच में बसे थे। भरतों के द्वारा समृद्ध होने के कारण अग्नि की एक संज्ञा भारत प्रसिद्ध हुई और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी को भारती कहा गया। भरतों के द्वारा विकसित, ज्ञान-प्रधान संस्कृति के लिये भारती, यह ठीक ही नाम है। 'भारत अग्नि' और 'भारती देवी' देश के जिस भाग में फैलती गई, देश का वह भू-भाग भारत नाम का अधिकारी होता गया। क्रमश: भारत नाम का सम्बंध सारे देश के साथ रूढ़ हो गया। भारत अग्नि और भारती देवी के आधार पर भारतवर्ष नाम की व्याख्या भूमि पर क्रमश: जन-प्रतिष्ठा और संस्कृति के विस्तार की सूचक है, और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बहुत ही सुंदर है।

ब्राह्मण-युग में प्राचीन भरत जन का अंतर्भाव कुरु-पंचाल के क्षत्रियों में होने लगा था। केवल एक जनपद के रूप में भरत नाम चालू रहा। प्राच्य भरत संज्ञा एक जनपद के लिए पाणिनि की अष्टाध्यायी में (२/४/६६;४/२/११३;८/३/७५) भी उपलब्ध होती है। ब्राह्मण-युग में भारत नाम की उत्पत्ति का आधार दौष्यंति भरत को कहा गया है। इन्होंने अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ यमुना तट पर और पचपन गंगा के तट पर किए। भरत के बढ़ते हुए प्रताप की महिमा को बताने के लिये यह भी कहा गया है कि सारी पृथ्वी जीतकर भरत ने इंद्र के लिये सहस्रों अश्वों को मेध्य किया :

*पर: सहस्रानिन्द्रायाश्वान्मेध्यान् य आहरत्*
*विजित्य पृथिवीं सर्वाम्।।*

(शतपथ. १३/५/३/१३)

इस गाथा में 'विजित्य पृथिवीं सर्वाम्' शब्द महत्त्वपूर्ण है। दिगंत-व्यापी भरत के

प्रताप को प्रकट करने वाली दूसरी गाथा यह है :

*महदद्य भरतस्य न पूर्वं नापरे जनाः।*
*दिवं मर्त्य इव वाहुभ्यां नोदापुः पंचमानवाः।।*

(श. ब्रा.)

अर्थात् भरत के महत् या महत्त्व को न पहले के न बाद के जनों में कोई प्राप्त कर सका, जैसे पृथिवी पर खड़े हुए किसी व्यक्ति के लिये आकाश को छूना कठिन हो। सब पृथिवी को अपने विजित में लाने के कारण भरत का महत्त्व पहले के और बाद के इतिहास में सबसे अधिक समझा गया। ज्ञात होता है कि भरत के इस विशाल चक्रवर्ती स्वरूप से भारत देश के नाम का सम्बंध भारती जनता को बहुत रोचक प्रतीत हुआ। कुरु-पंचालों के यश-प्रधान काव्य महाभारत इतिहास में भरतवंशोत्पन्न भारत और देशवाची भारत का सम्बंध बिल्कुल निश्चित हो चुका था और उसमें 'वर्षं भारत भारतम्' महाभारतकाल का सबसे बढ़िया भौगोलिक सूत्र है जो आज भी हमारे काम का है।

### *मध्यदेश-आर्यावर्त*

मनु के धर्मशास्त्र में और पतंजलि के महाभाष्य में मध्यदेश और आर्यावर्त इन दो नामों का भी प्रयोग पाया जाता है। भारत नाम का प्रयोग वहां नहीं है। मध्यदेश और आर्यावर्त नामों की परंपरा लौकिक संस्कृत और काव्य-साहित्य में बराबर आगे चलती रही। पर इन दोनों नामों का प्रयोग समस्त देश के लिये न होकर उत्तरी भारत, विशेषतः गंगा-यमुना की अंतर्वेदी की विस्तृत सीमाओं के लिये ही प्रसिद्ध रहा। मनु में मध्यदेश के लिये बड़ी श्रद्धा का भाव प्रकट किया गया है। मध्यदेश मानव-चरित्र के लिये पृथिवी का आदर्श और उसका हृदय था। गुप्त-काल के सुवर्णयुग में भी मध्यदेश न केवल भारवर्ष में, बल्कि चतुर्दिगंत में भी प्रसिद्ध हो गया था। नेपाल और तिब्बत में अंतर्वेदी के निवासी गौरव के साथ 'मध्यदेशीय' या मधेसिया कहे जाने लगे।

### *सिंधु-हिन्दु*

देश के नामकरण की एक दूसरी धारा ऋग्वेदीय 'सिन्धु' शब्द है। ऋग्वेद में सिंधु शब्द उस महान् नद की संज्ञा के लिये प्रयुक्त हुआ है जो उत्तर-पश्चिमी भारत के भूगोल की सब से बड़ी विशेषता है। सिन्धु के इस पार का पंचनदीय प्रदेश तो भारतवर्ष की सीमा के अंतर्गत है ही, सिंधु के उस पार का वह काँठा भी जहां का पानी ढलकर सिंध में आता है और जिसमें कुभा (काबुल नदी), सुवास्तु (स्वात पंजकोरा), गोमती (गोमल), क्रुमु (कुर्रम) आदि नदियाँ हैं — सदा भारतीय भौगोलिक विस्तार का एक अंग माना जाता था। अफगानिस्तान (आश्वकायन, गंधार), बदख्शां और पामीर (कंबोज) का प्राचीन भूगोल एक प्रकार से बिल्कुल भारतीय संस्कृति की देन है और भारतवर्ष का जो सबसे पुराना प्राक्-पाणिनि-काल का साहित्य है, उसके साथ उस भूगोल का घनिष्ठ सम्बन्ध है। विक्रम की लगभग दसवीं शताब्दी तक सिंधु के उस पार के देशों से भारतवर्ष की हिन्दू-संस्कृति का संबन्ध अटूट बना रहा। उस समय सिंधु के तट पर उभ्दांडपुर नामक राजधानी (आधुनिक

ओहिंद) में हिन्दू धर्म के अनुयायी शाही राजाओं का आधिपत्य था।

सिंधु नाम से हिंदू शब्द की कल्पना का सम्बंध मुस्लिमकाल से समझना भ्रम है। मुसलमानी धर्म के जन्म से भी बारह सौ वर्ष पहले ईरानी सम्राट द्वारा (प्राचीन रूप दारयवाहु, संस्कृत धारयद्वसु) के शिलालेखों में विक्रम से छठी शताब्दी पूर्व में भारतीय प्रदेशों के लिये हिंदू शब्द प्रयुक्त हुआ था। प्राचीन शूषा (आधुनिक सूसा) राजमहल से मिले हुए शिलालेख में लिखा है :

*पिरुष् ह्य इदा कर्त हचा कुष् आ उता हचा हिन्दउव्   उता हचा हरउवतिसा अर्वाग्य् (पंक्ति ४३-४४)*

अर्थात् (इस राजप्रसाद के लिये) हाथीदांत जो यहाँ बनाया गया वह कुष देश से, और हिंदु से, और हरहैती से लाया गया।

इसमें हिंदउव् हिन्दु शब्द की सप्तमी का एकवचन संस्कृत सिन्धौ के बराबर हैं। उस समय भारतवर्ष का हिन्दु नाम ईरान आदि विदेशों में प्रसिद्ध था।

दारा के अन्य लेखों में 'हिंदुष्' अर्थात् हिंदू (सं. सिंधु) और 'हिंदु विअ' अर्थात् हिंदू देश का निवासी (सं. सिधुव्य:) ये शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। पाणिनि के भूगोल के अनुसार सिंधु एक जनपद-विशेष का नाम भी था, जो आधुनिक पंजाब का सिंधु-सागर दोआब है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जिसे अब सिंधु कहते हैं उसका प्राचीन नाम सौबीर था। प्राचीन सिंधु जनपद का नाम सिंध नदी के तट पर दूर तक फैले हुए होने के कारण ही पड़ा था। इसलिये यद्यपि एक जनपद-विशेष के लिये भी सिंधु शब्द रूढ़ हो गया था, फिर भी भारत देश के लिये उसके रूपांतर हिंदू का प्रयोग उस समय विदेशों में होता था। दारा के लेखों में वह जनपद-विशेष के लिये न होकर भारत देश के लिये ही प्रस्तुत हुआ है, क्योंकि हाथीदाँत का व्यापार जिसके कारण हिंदु शब्द का उल्लेख हुआ है, सिन्धु-सागर दोआब के भूप्रदेश की अपेक्षा देश के पूर्वी भागों में ही अधिक होता है।

सिंधु-हिन्दू समीकरण के आधार से ही प्राचीन यूनानी लेखकों ने इस देश को इंडोस (Indos) कहा। अंत्य सकार प्रथमा के एकवचन का चिन्ह है जैसा सं. सिंधुस और ईरानी हिंदष् में भी पाया जाता है। इसी परंपरा से भारतवर्ष के हिन्दुस्तान, इंडिया, अब ये नाम प्रचलित हुए हैं।

इन नामों के विषय में एक बात ध्यान देने की है कि स्वयं भारतवासियों ने अपने देश के नामकरण में भरत शब्द से प्रचलित परंपरा को अपनाया, किंतु विदेशी लेखकों ने सिंधु शब्दवाले नामों को ग्रहण किया। चीनी लोगों ने भी सिंधु नाम की परंपरा का व्यवहार किया। चीनी सेनापति पन-योड. ने वि. १८२ (१२५ ई.) में चीनी सम्राट को पश्चिमी देशों का वर्णन करते हुए लिखा है कि थि-एन्-वु देश (देवों का देश) शिन्-तु नाम से भी प्रसिद्ध है। शिन्-तु सिंधु का ही चीनी रूप है[१]। चीनी साहित्य में इसी को 'इन-तु-को' भी कहा है जिसमें इन-तु, शिन्-तु (सिंधु) का रूपांतर है और 'को' का अर्थ देश है[२]।

---

१. फारेन नोटिसेज् ऑफ सदर्न इंडिया, लेखक श्री नीलकंठ शास्त्री, पृ. १०

२. 'इन्-तु-को' नाम की सूचना मुझे श्री शांति भिक्षुजी, चीनभवन, शांति-निकेतन, से प्राप्त हुई जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। 

✍ संवीक्षण

# हमारे देश की वाचिक परम्परा

**डॉ. विद्या निवास मिश्र**

वाचिक परम्परा की बात शुरू करूँ उसके पहले बतला दूँ, हर वाचिक सम्प्रेषण, वाचिक परम्परा नहीं है। असंख्य वाचिक सम्प्रेषणों से छन कर और जातीय भाव में भिन्न कर जो वाक् बराबर सर्जना की कड़ाही में उबलती रहती है, वही वाचिक परम्परा है। मैं वाचिक परम्परा का आदमी माना जाता हूँ। कुछ लोग, गुरुगम्भीर लोग, वाचिक परम्परा के प्रति हेठी का भाव रखते हैं, वे समझते हैं, लिखने और छपने से ही बात गंभीर होती है। कहने से बात छोटी हो जाती है। कुछ लोग दूसरे छोर पर मौन को ही सबसे सशक्त सम्प्रेषण मानते हैं। पर मौन स्वयं में वाचिक स्थिति है। दो आदमी आमने-सामने बैठे हैं, कोई शब्द नहीं किसी के मुंह से निकल रहा है पर सम्प्रेषण होता है। कभी-कभी बात करते-करते चुप हो जाते हैं, चुप्पी से सम्प्रेषण होता है। न कह पाना, कहते-कहते रह जाना भी तो वाचिक सम्प्रेषण का ही अनुन्मीलित क्षण है।

वाचिक सम्प्रेषण से यों तो दुनिया का काम चलता है पर जिस संस्कृति में वाचिक परम्परा का पलड़ा भारी रहता है, उसकी कुछ अलग विशेषताएँ अपने आप रच जाती हैं। एक तो यह कि उस संस्कृति में वचन का मोल कुछ अधिक होता है, प्राण जाहिं पर वचन न जाई। दूसरे यह कि भाषा का परिष्कार एक जीवन मूल्य बन जाता है। जो आदमी जितनी मधुर और जितनी असरदार बात करता है, उतना ही उसे सम्मान मिलता है। शुद्ध उच्चारण करने वाले को और कहीं दिव्य लोक मिलते हों चाहे न मिलते हों, भारत में एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुष्ठु, प्रयुक्तः स्वर्गेलोके कामधुग् भवति। एक शब्द भी अपनी समस्त सम्भावनाओं और अपने समस्त प्रयोगों के साथ अगर समझ लिया जाय और ठीक-ठीक प्रयोग में ला दिया जाय तो वह स्वर्गलोक में मनचाही पूरी कर देता है। यह केवल अर्थवाद नहीं है। शब्द को पूरी तरह जानना इतना आसान नहीं है। शब्द साधना का अर्थ है सृष्टि की प्रक्रिया का साक्षात्कार। सूक्ष्म स्तर पर नाद ही सृष्टि का बीज है और स्थूल स्तर पर भी एक शब्द, जब असंख्य सन्दर्भों से जोड़ते हैं, एक शब्द से हजारों शब्द बनते हैं तो हमारे जातीय जीवन का एक पूरा का पूरा वृक्ष उग जाता है। एक राम नाम में कोटि-कोटि रामकथाओं की गूँज समायी रहती है और जितनी बार मन से राम का नाम लेते हैं, उतनी बार राम की असंख्य छवियाँ सामने उतरती चली जाती है।

तीसरे यह कि वाचिक परम्परा के कारण संस्कृति की निरन्तरता बनी रहती है,

यह जो पीढ़ियों की दूरी की बात इतनी होने लगी है, उसका कारण वाचिक परम्परा के प्रति अनादर है। हमारे यहां वाचिक सम्प्रेषण एक पीढ़ी लांघ कर ही अधिक सक्रिय होता रहा है, नाना-नानी, दादा-दादी, नातियों-नातनियों, पौत्र-पौत्रियों को कहानी सुनाते रहे, लोरी सुनाते रहे और बच्चों के हर प्रश्न का उत्तर देते रहे, माता-पिता तो बस नाम मात्र की बातचीत करते थे। इसलिए अतीत और भविष्यत् के बीच अपने आप अन्तर महत्त्वहीन था, बाल सुलभ मानवीय उत्सुक्ता के साथ जुड़कर अधिक उम्र का अनुभव एक वृद्ध के जीवन में चाव पैदा करता था, दूसरी ओर बच्चे के भीतर आत्म विश्वास भरता था। वाचिक परम्परा केवल बोली जाने वाली भाषा ही नहीं है, वह जीवन-दर्शन भी है। हम ऐसे रस्सी बंट रहे हैं, ऐसे-ऐसे देखो न। देखो मैंने ऐसे मिट्टी के लोंदे को ऐसा-ऐसा रूप दिया। ऐसे देखो लकड़ी में से चिड़िया की चोंच निकल आयी। ऐसे सूत काता जाता है। एक उंगली ऐसे रखो। ये कौशल जो बिना किसी किताब के सम्प्रेषित होते रहे और हर कला के घराने बनते रहे, वह वाचिक परम्परा के कारण। हर साधन में आगम का महत्त्व है, हर आगम में कोई न कोई वक्ता है, कोई न कोई प्रश्नकर्ता। अधिकतर शिव और पार्वती का जोड़ा ही वक्ता श्रोता रहता है। आगमों में प्राय: ऐसे वर्जनात्मक वचन मिलेंगे कि यह मंत्र परम गोपनीय, इसे उसी को देना, जो इसका अधिकारी हो। यह शास्त्र उसको बतलाना जो इसे सुनने की इच्छा रखता हो। जो दूसरे का दु:ख-दर्द सुनने का धीरज मात्र नहीं, कर्तव्य मात्र नहीं, भाव भी रखता है, वही सेवा कर सकता है। वाचिक परम्परा में कहने वाले से सुनने वाला बड़ा होता है, क्योंकि सुनने वाले की उत्कंठा से, सजगता से और भीतरी आवश्यकता से वक्ता जितना जानता है, उड़ेल देता है, जैसे गाय बछड़े के हूवे मारने से पिन्हा जाती है। अभिनव गुप्त ने इसीलिए वाग् को धेनु कहा है और सच्चे सहृदय को बछड़ा, जिसके कारण ही जगत् को वाणी का अमृत रस मिलता है। साधना के क्षेत्र में तो बिना गुरुमुख के कुछ वस्तु प्राप्त होती नहीं, होती भी है तो वह निष्फल हो जाती है। एक दीक्षा की, एक गुरु-शिष्य परम्परा के प्रति समर्पण की शर्त रखी जाती है। तुम्हें जानना है जानना है, इसलिए कि तुम्हें तो जानना है, उसे उचित पात्र को जतलाना है, देना है। लेन देन के इस अनवच्छिन्न प्रवाह में लेने देने वाला कहीं विलीन हो जाता है, व्यक्ति नहीं रहता, केवल एक से दूसरे तक पहुंचना और बराबर नया होकर पहुंचना ही रह जाता है।

ऐसी संस्कृति में पला, इसलिए वाचिक परम्परा की बात करने का साहस कर पाता हूँ, नहीं तो टीका-टिप्पणी करने वाले कहते ही रहते हैं कि इतिहास नहीं पीछे लौटता, छापेखाने के जादू ने वाचिक संप्रेषण की बर्बरता खत्म कर दी है। अब किताबों से एक बात असंख्य लोगों तक पहुंच जाती है। पर ये कहने वाले नहीं देखते कि श्रव्य दृश्य

संचार-साधनों ने छापेखाने को भी पीछे कर दिया है, ऐसी सम्भावनाएँ उभर रही हैं कि रचनाएँ देखी जायेंगी रुपहले रंगीले चित्रपट पर, वे किताब सामने रखकर पढ़ी नहीं जायेंगी। मैं इस श्रव्य दृश्य सम्प्रेषण को शुद्ध श्रव्य सम्प्रेषण से कुछ घटिया ही मानता हूँ, क्योंकि सुनने में जो एकाग्रता होती है, वह देखने में नहीं। श्री कृष्ण के रूप पर आँखें कुछ ही पल टिकती हैं और रूप से भरकर अंसुवा जाती है। भर आंख कब राधा ने श्रीकृषण को देखा, पर वंशी की ध्वनि उस वंशी में राधे की टेर कानों में पड़ी तो बस रोम-रोम कान बन जाते हैं एक-एक शिरा कान बन जाती है, पूरा शरीर वंशी बन जाता है। आमने-सामने बैठे सुनने का सुख कुछ ऐसा होता है जो सारे दु:ख हर लेता है। आज चिकित्सा में इस बात का महत्त्व समझा जाने लगा है कि चिकित्सक रोगी का दु:ख आत्मीयता स्थापित करके बातों से जितना हर सकता है, उतना दवा से नहीं। शरीर केवल शरीर नहीं है, मन भी है, और मन का सीधा सम्बन्ध वाक् से है। वैदिक साहित्य में तो मन और वाक् को जोड़ी के रूप में देखा जाता है, वाग् व्यापार का वर्णन किया ही इस रूप में गया है, आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युंक्ते विवक्षया। मन: कायाग्निमाहत्ति स प्रेरयति मारुतम्। आत्मा या चैतन्य बुद्धि से अर्थ को ग्रहण करके अर्थ को व्यक्त करने की इच्छा या मन को विवक्षा के साथ जीतता है, जोड़ता है, नाधता है और विवक्षु मन शरीर के भीतर ऊर्जा को जगाता है, वह ऊर्जा फिर प्राणों को प्रेरित करती है कि शब्द बनें।

इस प्रकार वाचिक परम्परा शरीर और मन, आत्मा और बुद्धि, मन और प्राण, प्राण और वाणी इन सबके सामंजस्य पर बल देती है। वैदिक ऋषियों ने कहा ऐसी वाणी सख्य की, सखा भाव की, सखी भाव की पहचान करती है, अपने भीतर सोयी हुई, पराये होने की पहचान कराती है, इच्छा की पहचान कराती है, हम हैं ही इसलिए कि दूसरों के हैं, यह परम्परा जीवन के रस की तलाश है। आज जब रस सूख रहा है, मिट्टी के कचरे से पटती झीलों की तरह कीच-कीच हो रहा है, तब सन्ध्या के धुंधलके में थोड़ा-सा जो कहीं पानी है, वही झलमलाता है और वहीं लगता है प्रकाश पानी बन गया है। आदमी के भीतर का पानी मर रहा है, इसी से पानी की पुकार और तीव्र हो रही है।

मैंने देखा है उन सम्पन्न समाजों को जहां व्यक्ति के निजी एकान्त की सुरक्षा के नाम पर ऐसा घटित हो गया है कि बच्चे तरसते हैं, कभी ममी-डैडी से बैठकर बातें हों, बूढ़े माता-पिता तरसते हैं कि कोई बात करने वाला मिल जाये और किसी को फुरसत नहीं है, कि बात करें, चार दिनों में ही प्रेमियों के युगल ऐसे रीत जाते हैं कि उनमें से एक अगर कुछ बात करना भी चाहता है तो दूसरा माफी मांगता है, डियर, बड़ी हड़बड़ी में हूँ, मैं तुम्हें फोन करूँगा। उस समाज की सम्पन्नता यहां आये न आये, उसकी यह दरिद्रता बड़ी तेजी से आ रही है। अब बतरस का अभाव होता जा रहा है। जहां जाइए, बस काम

की बात, रेलवे कर्मचारी रेल है, डाकखाने का कर्मचारी डाक तो वकील कानूनी बहस, डाक्टर दवाइयों का नाम और अध्यापक बस प्रवेश परीक्षा, पारिश्रमिक और इसी जीवन में ऊब है। यह ऊब, यह बोरियत नयी सभ्यता की सबसे बड़ी नियामत है, छोटे-छोटे बच्चे भी अब कहने लगे हैं, अब बोर हो गये। बचपन में यह शब्द बड़ा विरल था, छात्र जीवन में मुझे याद है इलाहाबाद की पब्लिक लाइब्रेरी से अपने एक मित्र के साथ निकलता और साहित्य की बातों पर चर्चा करते-करते उन्हें हिन्दू बोर्डिंग हाउस पहुंचाने जाता, फिर वे मुझे पहुंचाने आते, बतरस में कई चकर लगा जाते और उस समय किताबों से पाया साहित्य इस संलाप के कारण ही आज भी मन में गूंज बना हुआ है। अब हर आदमी दूसरे आदमी को बोर करता है। यह इसलिए कि वाचिक परम्परा की जड़ें कहीं सूख रही हैं, हमें इसकी चिन्ता है, साहित्यकार शास्त्रकार कलाकार सबको चिन्ता है, क्योंकि सबको अपनी जड़ों का रस चाहिए। वह रस कभी लोकसाहित्य में मिलता है, लोकाचार में मिलता है, लोककला में, लोक संगीत में मिलता है और कभी केवल ऐसे आदमी के साथ बैठकर मिलता है जो स्मृतियों से जीता नहीं, स्मृतियों को जीता है, स्मृतियों को व्यतीत नहीं मानता अपने जातीय जीवन से अविलग देखता है।

हम अपना विश्लेषण करें तो और है क्या, कुछ माँ के प्यार के शब्द, कुछ हमजोलियों की कभी चुकने वाली नहीं बातचीत, कुछ एकान्त प्यार के अत्यन्त संक्षिप्त संबोधन, कुछ बातों के अन्तराल के मुखर मौन, कुछ कविता की पंक्तियाँ, कुछ उपन्यासों के पात्रों की व्यथा, कुछ दादा-दादी, नाना-नानी की कहानियों के कल्पना संसार की झलक, कुछ अपने गुरुओं की प्यार भरी डांट-फटकार, कुछ परिहास के रिश्ते की गालियां, कुछ फुहार, कुछ उलाहने के शब्द, कुछ गूंजें, कुछ अनगूंजें, इनको अपने जीवन से निकाल दें तो बचेगा क्या, ये ही हमारी आंखें हैं, कान हैं, ये ही स्पर्श की संज्ञा है, ये ही सुगन्ध है और ये ही अस्वाद, इन्हीं के कारण रोजमर्रा की बातों में भी रस आता है। रोजमर्रा की जिन्दगी, जिन्दगी लगती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में चित्रकूट की राह में जो पैरों में कांटे गड़ते हैं, वे चुभते नहीं, वे राम की स्मृति के स्पर्श के पुलक बन जाते हैं, उनसे एक नाता स्थापित हो जाता है और निराला के शब्दों में कहें तो लगे जो उपल पद हुए उत्पल ज्ञात, पत्थर पैरों के नीचे कमल बन जाते हैं।

अपसंस्कृति की जलकुंभियों से वाचिक परम्परा आक्रान्त भले ही हो, पर जीवन को जीवनीय बनाने के लिए तलब उसी पानी की है, जो अभी भी कहीं गहराई में जातीय मन की गहराई में बह रहा है। वाचिक परम्परा की जरूरत जितनी आज है, उतनी कभी न रही होगी। क्योंकि विमानवीकरण का कोई दूसरा समाधान नहीं रह गया है, सिवाय इस आत्मीय सम्प्रेषण के द्वारा जगाये गये एक दूसरे को एक दूसरे से भरने के भाव के।

# ब्रिटेन में हिन्दू संस्कृति का व्यापक प्रभाव

**पुरुषोत्तम नागेश ओक**

सन् १९४७ तक के लगभग २०० वर्ष अंग्रेजों का भारत पर स्वामित्व रहा। यह सर्वज्ञात है, क्योंकि वह आधुनिक इतिहास है। किन्तु ब्रिटेन पर भी कभी हिन्दुओं का आधिपत्य था, यह बात कोई व्यक्ति कहे, तो लोग उसे सिरफिरा कहेंगे, क्योंकि वह सारा इतिहास लुप्त हो गया है।

हिन्दू-संस्कृति, परम्परा में 'राजा' तथा 'राया' यह दोनों शब्द समान अर्थ में प्रयोग होते हैं। जैसे शिवाजी महाराज को 'शिवराया तथा शिवराजा' भी कहा जाता है। उसी प्रकार अनेक रायगढ़ और राजगढ़ महाराष्ट्र में है। वही प्रथा आंग्ल वाक्प्रचार में भी है, जैसे Regal यानि 'राजल' तथा Royal यानि 'रायल' दोनों राजा के ही द्योतक हैं।

पूर्ण राजसत्ता के अधिकार के द्योतक आंग्ल शब्द हैं Sovereignty। वह तीन संस्कृत शब्दों का समास है। जिसमें Sove यानि 'स्व', regin यानि 'राजन' तथा ty यानि 'इति'। इस तरह Sovereignty यह 'स्व-राजन् -इति' इन तीन संस्कृत शब्दों का गुट है। इसी अर्थ का अन्य शब्द Suzerainty भी है।

आंग्ल भाषा में 'राजा' को किंग कहा जाता है। वह वास्तव में 'सिंह' है। ४००-५०० वर्ष पूर्व वह 'सिंग' शब्द 'Cing' लिखा जाता था। आगे चलकर का C उच्चारण 'क' होने से वह किंग हो गया। उसी कारण राजा के अधिकार वाले प्रदेश को Kingdom (किंगडम) कहते हैं, जो वास्तव में संस्कृत 'सिंहधाम' शब्द है।

Regime शब्द देखें, इसका आंग्ल उच्चार 'रेजीम्'वास्तव में 'राज्यम्' है। ऐसे ही reign'रेन' शब्द राजा के राज्यकाल का द्योतक है। इस तरह ब्रिटेन की सारी प्रशासनिक परिभाषा राज, राजा, राज्यम् आदि शब्दों पर आधारित है। वैसे तो पूरी आंग्ल भाषा भारतीय भाषाओं की तरह पूर्णतया संस्कृत ही है। जैसे Man यानि मानव, Door = द्वार, Cow = गो, That = तत्, They = ते, Municipality = मनुष्य-पाल-इति, Staircase = स्तरकोष, Character = चारित्र्य, Syllabus = शालाभ्यास, Curriculum = गुरुकुलम् आदि। कृत, त्रेता, द्वापर, कलि आदि युगों में सारे, विश्व में संस्कृत भाषा का ही प्रचार, प्रभाव होने से हिन्दी, मराठी आदि भारतीय भाषाएँ भी संस्कृतमूलक हैं।

अब आंग्ल भूमि के विविध प्रदेश, प्रान्त, नगर आदि के नाम देखें। यह स्मरण रहे कि संस्कृत 'हस्त' Hand शब्द का आंग्ल उच्चार तथा 'स्थान' का Land (लैण्ड)

होता रहा है। अत: Ireland कहलाने वाले द्वीप का मूल संस्कृत उच्चारण 'आर्यस्थान' था। उसकी राजधानी 'बेलफास्ट' कभी 'बलप्रस्थ' थी। उस नगर से कुछ दूरी पर विविध दिशाओं में चार-पाँच छोटे किले हैं। उसी द्वीप में राजधानी से कुछ दूरी पर एक ऐतिहासिक मैदान है। जिन वीरों के रथ वहां खड़े किये जाते थे, उनकी नाम-पट्टिका उस मैदान में आज भी लगी हैं। 'रथ' शब्द वहां लिखा देखकर प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में रथ सर्वत्र होते थे।

ब्रिटेन स्वयं ही 'बृहत्स्थान' ऐसा संस्कृत शब्द है, क्योंकि विशाल सागरों के बीच वह लम्बे-चौड़े द्वीप में स्थित हैं। ब्रिटेन के वैदिक गुरुकुल बन्द हुए सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर वहां की जनता भूल गयी कि बृहत् स्थान का अर्थ ही विस्तृत स्थान है। तथापि विस्तृत उर्फ 'विस्तीर्ण' का कुछ अस्पष्ट सा स्मरण उन्हें था। अत: उन्होंने ब्रिटेन को ग्रेट ब्रिटेन कहना आरम्भ करा दिया। संस्कृत भाषा का सम्पर्क टूट जाने से उन्हें इस बात का विस्मरण हो गया और जैसे "गाय का गोमूत्र ले आओ" में द्विरुक्ति का दोष होता है, वैसा ही 'ग्रेट ब्रिटेन' कहने में होता है।

ब्रिटेन का अन्य एक प्रान्त स्काटलैंड (Scotland) है। वह 'क्षात्र स्थान' इस संस्कृत नाम का विकृत उच्चार है। वहाँ शूरवीरों को स्फूर्ति देनेवाले काव्य को 'बैलड' कहते हैं। वह वास्तव में 'बल-द' (बल देने वाला काव्य) ऐसा संस्कृत शब्द है। (Poet) भी संस्कृत का 'भाट' ही है।

### *वेदनगरी*

स्कॉटलैंड की राजधानी एडिनबर्ग को बोलचाल में 'एडिनब्रा' कहते हैं। यूरोप में संस्कृत दुर्ग शब्द बुर्ग (या बर्ग) उच्चार से प्रचलित है। अत: Edinburgh नाम यह 'वेददुर्ग' का विकृत उच्चार है। यूरोप में सन् ३१२ से लगभग सन् ११४० तक समस्त जनता पर छलबल से ईसाई पन्थ थोपा गया। तब संस्कृत का लोप होते-होते वेदों का उच्चार 'एद्दा' होने लगा। इसी कारण 'वेद दुर्ग' नाम का उच्चार एद्दंबर्ग ऐसा प्रचलित हुआ।

### *आयुर्वेद*

सन् ३१२ तक यूरोप में वैदिक जीवन प्रणाली, आयुर्वेद तथा संस्कृत भाषा का ही प्रसार था। अत: आजकल की डॉक्टरी इलाज की परिभाषा भी संस्कृतोद्भव है जैसे औषधिविक्रेताओं के लिए सौ वर्ष पूर्व Chemists and Druggists के बजाय Apothecary शब्द प्रचलित था। वह 'पथ्यकारी' ऐसा संस्कृत शब्द है। उसके आरम्भ में 'अ' अक्षर फालतू लगा है, जैसे 'स्नान करो' कहने के बजाये कई जन 'अस्नान कर लो' कहते हैं। डॉक्टर (Doctor) शब्द 'दु:ख-तार' नाम का विकृत रूप है। Osteomalacia (ऑस्टिओमलेशिया) रोग यानि 'अस्थिमलाशय' संस्कृत शब्द है। Encephalitis (अंकपालतस्) तथा उसी प्रकार का Meningitis (मेनिन्जायटिस्)

यानि मनन्—ज—शोयस्' उर्फ भेजे में सूजन निर्माण होना। ऐसे शब्दों में जहाँ 'आयटिस, सायटिस' आदि अंशपद होता है, वह आयुर्वेदीय 'शोयस' यानि 'सूजन' का द्योतक होता है। कार्डियोलॉजी (Cardiology) यह 'हार्दियोलग' यानि हृदय से लगा संस्कृत शब्द है। आँतों में पाचनक्रिया वाले भाग को पैंक्रियाज (Pancreas) कहते हैं। उसमें दूसरा अक्षर A के स्थान पर यदि 'च' लिखा जाये तो वह शब्द Pचncreas पूरा 'पाचनक्रिया' ऐसा शुद्ध संस्कृत प्रतीत होगा।

Stethoscope (स्टेथॉस्कोप) शब्द मूलत: "स्थितिस् पश्यति" ऐसा संस्कृत है; किन्तु उसका उच्चारण अन्तिम भाग में 'पश्य' के बजाय 'श्यप' और 'स्कोप' इस प्रकार बिगड़ गया है। आंग्लभूमि में सागरतीर के एक प्रदेश को Wales (वेल्स), कहते हैं, जो ज्यों का त्यों संस्कृत शब्द है। ५६ ईसवी पूर्व (भारत के सम्राट विक्रम के समकालीन) ज्यूलिस सीजर नामक सम्राट ने जो संस्मरण लिखे हैं, उनमें ब्रिटेन की राजधानी लन्दन के बजाये 'लन्दनीयम्', फ्रान्स की राजधानी 'पेरिस' का उल्लेख 'पेरिसोरियम्' ऐसा किया है। इससे स्पष्ट होता है कि नगरों के नाम नगरम् (काञ्चीपुरम्, विजयनगरम् आदि) ईसापूर्व के यूरोप में भी होते थे।

### *घोड़ों की नस्ल सुधार*

प्राचीन वैदिक क्षत्रियों के शासनकाल में अश्वदल सेना के प्रमुख अंग होते थे। अत: सशक्त अश्वों की निर्मिति, उनकी अच्छी देखभाल तथा उनको प्रशिक्षित करना आदि का बड़ा महत्त्व था। घोड़ों की नस्लें भी सुधारी जाती थीं। इसके प्रमाण कई देशों तथा नगरों के नामों में पाये जाते हैं। जैसे अंग्रेज राजघराने द्वारा घोड़ों की नस्ल-सुधार जहाँ करायी जाती है, उस नगर का नाम Ascot (अश्वकोट) है। अश्वदल संवर्द्धन का एक प्रमुख प्राचीन केन्द्र होने से उस नगर का ये नाम पड़ा।

### *'कोट' नाम का नगर*

भारत में राजकोट, बागलकोट, अमरकोट आदि की तरह आंग्लदेश में भी किंग्सकोट, चार्लकोट, हीथकोट आदि नगर हैं। गाँव के इर्द-गिर्द कोट (चारदीवारी) होने से हमलावरों से गाँव की रक्षा होती थी। उसी कारण सारे वस्त्रों के ऊपर लोग जो 'कोट' पहनते हैं, वह भी संरक्षक दीवार जैसा ही शरीर की ठण्ड से रक्षा करता है। अत: कोट 'रक्षणकर्त्ता' इस अर्थ का संस्कृत शब्द है।

### *ब्रिटेन के सिक्कों की संस्कृत प्रणाली*

भारतीय सिक्कों की जिस प्रकार पै (पाई), पैसा, आना, रुपिया, ऐसी श्रेणी थी, वैसी आंग्ल सिक्कों की पेन्स्, शिलिंग, पौण्ड ऐसी श्रेणी है। वह सारी संस्कृत मूलक है। 'पेन्स' यह संस्कृत 'पणस्' यानि पैसा शब्द है। शिलिंग यह नाम 'शिवलिंग' का बिगड़ा उच्चार है। इससे प्रतीत होता है कि 'शिलिंग' पर शिवलिंग की प्रतिमा होती थी। पौण्ड शब्द मूलत: 'पौण्ड्र' कहलाता था। भगवद्गीता के प्रथम अध्याय का पन्द्रहवाँ श्लोक

पढ़ें। उसमें लिखा है —

*"पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदर:"*

अर्थात् शूरवीर भीम ने महाशंख बजाया, उसका नाम 'पौण्ड्र' था। इससे अनुमानत: ब्रिटेन के उच्चतम श्रेणी का सिक्का महाभारतीय युद्ध की स्मृति में 'पौण्ड्र' कहलाता था और उस पर भीम के महाशंख की आकृति बनी होती थी।

### *ब्रिटेन में शिव मन्दिर और नगर*

हिन्दुस्थान में जिस प्रकार केदारेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर, महाबलेश्वर आदि शिवजी के नाम से नगर तथा मन्दिर बने हैं, वैसे ही आंग्ल देश में ईश्वर का 'शायर' ऐसा अपभ्रंश होकर वॉरविकशायर, पेंब्रोकशायर आदि जो नगर दिखायी देते हैं, वे सारे शिव मन्दिरों के पास बसे प्राचीन गाँव हैं।

ऐसे ही लंकाशायर (लंकेश्वर) तथा लंकास्टर (लंकास्त्र) रामायण की स्मृति जाग्रत कराते हैं।

बर्मिंघम नगर 'ब्राह्मणधाम' का विकृत उच्चार है। सम्भवत: वहाँ वेदपाठी ब्राह्मण तथा आयुर्वेद द्वारा उपचार करनेवाले वैद्यों की बस्ती थी। एन्सबुरी, श्यूसबुरी, वॉटरबुरी आदि जो 'बुरी' अन्त्यपद वाले नगर हैं, वे भी जलपुरी, कृष्णपुरी, सुदामापुरी इस तरह के संस्कृत नाम हैं। आंग्लभूमि में 'पुरी' का उच्चार 'बुरी' रूढ़ हुआ।

### *ऋषि—मुनि तथा देवदेवांगनाएँ*

यूरोपभर के ईसाईयों में जॉर्ज (George) नाम बड़ा प्रचलित है। वास्तव में उसका उच्चार गर्ग है। गर्ग मुनि वैदिक परम्परा में बड़े प्रख्यात हैं; किन्तु आंग्ल लिपि में केवल २६ अक्षर होने से उनके एक-एक अक्षर के दो-दो उच्चार होते हैं। जैसे G अक्षर 'ग' या 'ज' दोनों उच्चार होते हैं। Martin (मार्टिन) नाम वास्तव में मार्तण्ड (यानि सूर्य) नाम है। Mathew (मैथ्यू) 'महादेव' का विकृत उच्चार है; क्योंकि संस्कृत 'द' आंग्ल भाषा में 'थ' होता है, जैसे 'देवस' का उच्चार theos (थिऑस) होता है।

### *क्षत्रियवीरों का यम-पूजन*

स्काटलैण्ड नाम 'क्षात्रस्थान' नाम का विकृत उच्चार है, इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है। क्षात्र जीवन में वीर मरण का आदर्श रखा जाता है। अत: स्कॉटलैण्ड में अक्तूबर ३१ की रात को Festival of Samain यानि 'शमनोत्सव' मनाया जाता है। मृत्युदेव यम का एक नाम 'शमन' भी है। उसका उल्लेख अमरकोश में आता है। दशहरा के पश्चात् दिग्विजय पर निकलने की क्षत्रिय परम्परा थी ही। प्रस्थान से पूर्व क्षात्रवीर शिव-पूजन तथा यम-पूजन करते थे।

### *शिवजी के नाम के नारे*

शत्रु पर आक्रमण करते समय तथा विजयोत्सव पर शिवजी के नाम के नारे लगाने की विश्वभर में प्रथा थी। उदाहरणार्थ मराठों की सेनाएँ "हर हर महादेव" के नारे लगातीं, तो राजपूत "जय एकलिंग जी" गरजते, सिक्खों के जत्थे "सत् श्री अकाल"

कहते थे। उसी प्रकार यूरोप की सेनाएँ रथ में शिवजी की मूर्ति या शिवलिंग रखकर उसके पीछे-पीछे 'शिव शिव हरे' के नारे लगाती थीं। इसी का आधुनिक रूपान्तर 'शिप शिप हरे' तथा 'हिप हिप हुर्रे' बन गया है।

***'श्री' एवं 'हैलो'***

वैदिक परम्परा में "श्री" की उपाधि पवित्रता, श्रेष्ठता तथा अधिकार की द्योतक थी। उसी का बिगड़ा उच्चार 'शिर' (Sir) है।

आजकल दूरभाष पर या रास्ते में मिलने पर 'हैलो' कहने की प्रथा है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' आदि प्राचीन संस्कृत नाटकों में देखें, दुष्यन्त शकुन्तला को मिलते ही कहता था 'हला शकुन्तले!' तथा विदूषक को देखते ही कहता था 'हलऽ विदूषक! वही प्राचीन संस्कृत 'हलऽ' उद्गार वर्तमान 'हैलो' के रूप में प्रचलित है।

इन प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि इस विश्व के आरम्भ से मानव को प्राप्त वैदिक संस्कृत विरासत अल्पस्वरूप उथल-पुथल के बावजूद अनादि काल से निरन्तर सर्वत्र चल रही है। संस्कृत भाषा की इस बहुलता से ब्रिटेन में हिन्दू संस्कृति का व्यापक प्रभाव प्रत्यक्षसिद्ध है।

*सिरविहीन हुतात्माओं के कन्धों पर चढ़कर ही तो कोई राष्ट्र पतन के गर्त से अपना सिर ऊँचा करके निकल पाता है। मरण के अंधकार से पुनर्जीवन के उदयाचल की ओर बढ़ने के लिए शीशदान देने वाले ऐसे ही हुतात्माओं के शवों की ढेरियाँ तो राष्ट्र को खड़ी करनी ही पड़ती हैं। जाति के जीवन का आधार जयस्तम्भ की अपेक्षा उसके यशस्तम्भों की दृढ़ता पर ही अधिक अवलम्बित होता है।*

**स्वातन्त्र्य वीर सावरकर**

# अपनी संस्कृति की रक्षा कीजिए

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

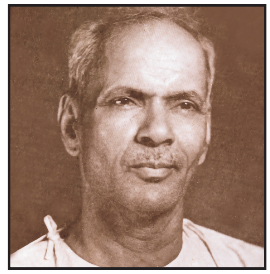

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
कलियुगाब्द 5012-5112
जन्म शताब्दी वर्ष

आजकल संस्कृति का अर्थ बहुत सीमित रूप में लिया जाने लगा है। भारतीय संस्कृति का बोध हमें भारतीय जीवन-पद्धति, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, हमारे सामाजिक जीवन, व्यापार, संगठनों, उत्सव, पर्व, त्यौहार इत्यादि से होता था। परन्तु आज जमीन खुदाई में प्राप्त खंडहरों के स्मृति-चिन्ह, नृत्यकला के कार्यक्रम या कुछ प्राचीन तथ्यों को पढ़ने, लिख लेने तक ही संस्कृति की सीमा समझ ली जाती है। प्राचीन ध्वंसावशेषों की खुदाई करके संस्कृति के बारे में तथ्य निर्माण करने के प्रयत्न पर्याप्त रूप में होते जा रहे हैं। यह सब प्राचीन इतिहास और हमारे सांस्कृतिक गौरव की जानकारी के लिए आवश्यक भी है, लेकिन इन्हीं तथ्यों को संस्कृति मान लेना भारी भूल है। भारतीय संस्कृति तो निरंतर विकासशील जीवनपद्धति रही है, उसे इन संकीर्णताओं में नहीं बाँधा जा सकता। हमारी संस्कृति केवल नाच-गाने तक ही सीमित नहीं है। इसमें जहाँ आनंद, उल्लास का जीवन बिताने की छूट है, वहीं जीवन के गंभीर दर्शन से मनुष्य को महामानव बनने का विधान भी है। बहुत कुछ अर्थों में संस्कृति, इतिहास की तरह पढ़ने-लिखने की वस्तु मान ली गई है। हमारे दैनिक जीवन में सांस्कृतिक मूल्य नष्ट होते जा रहे हैं। संस्कृति के संबंध में खोज करने वाले स्वयं सांस्कृतिक जीवन नहीं बिताते। उनका रहन-सहन, आहार-विहार, जीवन-क्रम सब विपरीत ही देखे जाते हैं।

भारतीय संस्कृति के लिए एक सबसे बड़ा खतरा है — पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार अभियान। इसकी शुरुआत तभी से हो गई थी, जब से अंग्रेज यहाँ पर आए थे। अपने शासनकाल में उन्होंने सभी प्रकार से अपनी संस्कृति के प्रसार की नींव मजबूत कर ली। पाश्चात्य संस्कृति के प्रचारकों के द्वारा प्रचार और स्कूल-कॉलेजों में शिक्षा के माध्यम से अपनी संस्कृति का प्रसार भारत में शुरू किया और यह आज के स्वतंत्र भारत में बढ़ा ही है, कम नहीं हुआ। एक समय था विश्व के विचारक साहित्यकार भारत से प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। इसे अपना आदिगुरु मानते थे। इसे सभी विदेशी विद्वानों ने स्वीकार किया है, लेकिन आज हमारे देश में इसके विपरीत हो रहा है। आज हम साहित्य, विचार एवं साधना के क्षेत्र में पश्चिम का अनुकरण करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हमें वहाँ के साहित्य का अध्ययन नहीं करना चाहिए, किंतु अपने मौलिक,

सांस्कृतिक तथ्यों, प्रेरणाओं को भुलाकर पश्चिम का अंधानुकरण करना हमारी संस्कृति के लिए बड़ा खतरा है।

एक सबसे बड़ी बात यह है कि हममें भारतीयता एवं अपनी संस्कृति का गौरव नष्ट होता जा रहा है। भारतीय कहलाने में हमारा सीना तन नहीं जाता। अपनी संस्कृति के प्रति हममें भक्ति भावना, निष्ठा आज नहीं रही है, ऐसी निष्ठा, जिसके लिए हमारे पूर्वजों ने अनगिनत कष्ट सहे थे, बड़े-बड़े प्रलोभनों को ठोकर मार दी थी। पाश्चात्य देशों ने जहाँ अपनी संस्कृति, सभ्यता के प्रचार के लिए करोड़ों रूपया बहाया है, अनेक कष्ट सहे हैं, वहाँ हमने अपनी संस्कृति, सभ्यता के प्रति पूरी-पूरी वफादारी भी नहीं निभाई है। काश! हमने इस संबंध में थोड़ा सा भी प्रयत्न किया होता तो आज संसार की स्थिति इससे भिन्न होती। पाश्चात्य संस्कृति के स्थान पर आज भारतीय-संस्कृति, मानव-संस्कृति का प्रभुत्व होता, जो संसार को तोड़ने की बजाए जोड़ती, विनाश के बजाए पालन-पोषण के साधनों की खोज करती। विघटन के स्थान पर एक-सूत्रता पैदा करती। बुद्धि चातुर्य, छल-छद्म, कूटनीति के स्थान पर हार्दिकता बढ़ती।

आज के युग में हमारे लिए बहुत बड़ी चुनौती है कि हम अपनी संस्कृति को नष्ट होने से बचाएँ। इसके प्रति आस्थावान् बनें। सांस्कृतिक मूल्यों को अपने जीवन में उतारें। साथ ही इसका प्रचार-प्रसार भी करें।

समस्त जप सूक्तों तथा वेद मन्त्रों में गायत्री मंत्र परम श्रेष्ठ है। वेद और गायत्री की तुलना में गायत्री का पलड़ा भारी है। भक्तिपूर्वक गायत्री का जप करने वाला मुक्त हो कर पवित्र बन जाता है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास पढ़ लेने पर भी जो गायत्री से हीन है, उसे ब्राह्मण नहीं समझना चाहिए।

— महर्षि पराशर

स्थान वृत्त

# सोलासिंगी धार के सिद्ध स्थान

डॉ. ओम दत्त सरोच

शिवालिक पर्वत श्रृंखला में सोलासिंगी एक प्रमुख धार है। यह धार बिलासपुर जिले में 'बव छाल' नामक स्थान से शुरू होती है, जहां सतलुज नदी इसे चीरकर भाखड़ा की ओर बहती है। भाखड़ा बान्ध बन जाने से अब सतलुज ने झील का रूप ले लिया है। यद्यपि वखलग से आगे सतलुज के पार भी यह पर्वत श्रृंखला काफी दूर तक गई है। परन्तु 'वखलग' से ही इस का आरम्भ माना जाता है, तथा वहां से लेकर यह सुदूर उत्तर में कांगड़ा जिले में 'चामुक्खा' नामक स्थान के पास ब्यास नदी का स्पर्श करते हुए समाप्त होती है। इतनी विस्तृत लम्बाई में फैली यह धार अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग नामों से प्रसिद्ध है। सतलुज के पार वखलग से लेकर शाहतलाई के ऊपर स्थित बच्छरेटू तक इसे 'कोटधार', बच्छरेटू-धार तथा बड़सर से चामुखा तक 'सोलासिंगी धार' चामुखा से भ्याम्बी नामक गांव जहां ऊना ज़िला की सीमा समाप्त होती है व कांगड़ा आरम्भ होता है, इसे धार चामुखा के नाम से जाना जाता है। भ्याम्बी से ब्यास नदी तक यह 'पीर सलूही' धार कहलाती है। इस सम्पूर्ण धार पर अनेक देवस्थान, गुफायें, सिद्ध-स्थान, व महात्माओं की तपोस्थलियां विद्यमान हैं।

इस धार का नाम 'सोलसिंगी' क्यों पड़ा इस सम्बन्ध में विचार आवश्यक है। शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से सोलह सींगों वाली धार सोलासिंगी कहलाई। सींग या सिंग शब्द संस्कृत के 'श्रृंग' शब्द का ही अपभ्रंश है। जिसका अर्थ सींग भी है और पर्वत की चोटी थी। धार के पक्ष में इसका अर्थ 'पर्वत की चोटी' ही उपयुक्त है। अत: सोलहसिंगी का अर्थ हुआ सोलह चोटियों (शिखरों) वाली धार। सोलासिंगी धार की भौगोलिक संरचना भी इस प्रकार की है कि इस की सोलह चोटियों 'सींगों' की तरह उभरी हुई, दिखाई देती है। इस प्रकार यह नाम सार्थक है। एक अन्य कारण भी इसके नामकरण के पीछे है। चामुखा नामक स्थान के पास जरोला गांव के ऊपर पुराने किले के पास 'सोलासिंगी सिद्ध' की स्थापना की तथा सोलासिंगी सिद्ध के नाम पर इस पूर्वी धार का नाम सांलासिंगी धार पड़ा है। यहीं पर दो प्राचीन किले हैं जो सोलासिंगी धार की सबसे ऊँची चोटियों पर विराजमान हैं, इनका निर्माण महाराजा संसार चन्द ने करवाया था तथा बाद में ये किले सिक्खों के अधिकार में रहे। इन किलों को भी 'सोलासिंगी के किले' कहा जाता है। बच्छरेटू से लेकर भ्याम्बी गांव तक यह सोलासिंगी धार ऊना तथा हमीरपुर जिले की सीमा के रूप में स्थित है, इसका पूर्व भाग हमीरपुर तथा पश्चिम भाग ऊना में पड़ता है।

सोलासिंगी धार का क्षेत्र सिद्धों की तपोभूमि तथा अन्य अनेक देवस्थलों की भूमि है जिनका संक्षिप्त परिचय देना यहां उपयुक्त रहेगा जो कि इस प्रकार से है–

१. ***बच्छरेटू मन्दिर :*** पाण्डवकालीन यह शिवमन्दिर बाबा–बालक नाथ जी की तपोस्थली शाहतलाई के ऊपर धार पर पांच किलोमीटर की दूरी पर है। क्षेत्र का यह प्रसिद्ध शिव मन्दिर है। इसके निर्माण का सम्बन्ध पाण्डवों से जोड़ा जाता है। यहां प्राचीन मन्दिर के साथ ही विशाल नौण है जहां शीतल जल का स्रोत है।

यहां बैशाखी के दिन विशाल मेला लगता है। यहां पास में ही एक प्राचीन किला है जो कि अब खण्डहर में बदल रहा है।

२. ***चामुखा महादेव :*** यह मन्दिर सोलासिंगी के किलों के पास ऊँची चोटी पर स्थित है। प्रचलित जनश्रुतियों के अनुसार इसका निर्माण भी पाण्डवों ने किया था। गुम्बद शैली में निर्मित इस मन्दिर में शिव की चार मुखों वाली पत्थर की विशाल प्रतिमा है। चार मुख होने के कारण ही इसे चामुखा कहा जाता है। चारों दिशाओं में इस मन्दिर के चार दरवाजे हैं।

३. ***श्री नृसिंहदेव स्थान ठाकुर द्वारा पिपलू :*** यह मन्दिर गांव पिपलू जिला ऊना में स्थित है। पिपलू केवल हिमाचल में ही नहीं, अपितु दूसरे राज्यों पंजाब, हरियाणा में भी विख्यात है। पूरे क्षेत्र का यह प्रमुख देवता व श्रद्धा का केन्द्र है जिसका यहां लगभग तीन सौ वर्ष पुराना मन्दिर है। यहां एक पीपल के हरा होने के कारण ही इस स्थान का नाम 'पिपलू' पड़ा। यहां शालिग्राम जी के पत्थर की शिला स्थापित है, जिसे भगवान विष्णु का नृसिंहावतार माना जाता है। यह शिला हटली गांव के एक किसान को जंगल में दबी मिली थी जिसे दैवी शक्ति ने स्वप्न में निर्देश दिया था कि इसे धार की चोटी पर स्थित सूखे पीपल के नीचे रखे। उसकी स्थापना से ही सूखा पीपल हरा भरा हो गया जो कि आज भी विद्यमान है। यहां मन्दिर परिसर में पीपल व वट का विशाल पेड़ है। यहां प्रतिवर्ष निर्जला एकादशी को विशाल मेला लगता है।

४. ***भीमा देवी या भ्याम्बी का ठाकुर द्वारा :*** यह मन्दिर गांव भ्याम्बी जो कि सोलासिंगी धार पर जिला ऊना का आखिरी गांव है, में स्थित है। यह मन्दिर प्रेमी नामक युवती व साहब नामक युवक की स्मृति को समर्पित है। अत: इसका नाम प्रेमी साहब पड़ा। इसी गांव में एक अन्य मन्दिर भीमा देवी का है, भीमा के नाम पर ही भ्याम्बी नाम इस गांव का पड़ा है। यह देवी मन्दिर बहुत प्राचीन है।

***सोलासिंगी धार के सिद्ध स्थान :*** उपर्युक्त प्रसिद्ध देवस्थानों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक देवमन्दिर इस धार पर स्थित है। इसके अतिरिक्त इस धार की गुफाओं, शिखरों व तलहटी में सिद्ध महात्माओं की तपोस्थलियाँ वं स्थान है, जो कि आज भी लोगों की श्रद्धा का केन्द्र हैं। इन सिद्ध स्थानों का विवरण इस प्रकार है –

१. ***लच्छमण जति सिद्ध :*** लच्छमण जति सिद्ध की स्थापना शाहतलाई से मरोतन जाने वाली सड़क पर भड़ोलियां गांव से लगभग तीन कि.मी. दूर वकैण नामक गांव में है।

मन्दिर में बाबा जी की पत्थर की मूर्ति स्थापित है। मन्दिर में प्रतिदिन पूजा की जाती है। पूजा में धूप, ज्योति, फूल आदि शामिल हैं।

२. ***सोलासिंगी सिद्ध :*** सोलासिंगी धार पर ज़रोला गांव के शिखर पर प्राचीन सोलासिंगी किले के पार्श्व की गुफा में सोलासिंगी सिद्ध की स्थापना है। प्राकृतिक गुफा के अन्दर बाबा जी की पत्थर की मूर्ति पद्मासन मुद्रा में विराजमान है। पास में एक शिला पर नाग उत्कीर्णित है तथा कुछ अन्य प्रस्तर प्रतिमायें हैं, सोलासिंगी किले का जब निमार्ण शुरू हुआ तो दिन में जितना निर्माण होता था, वह रात में गिर जाता था। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। एक दिन किसी मज़दूर को रात में स्वप्न द्वारा दृष्टान्त हुआ कि यहां कोई दिव्य शक्ति मौजूद है तथा इस गुफा में इसकी विधिवत् स्थापना व पूजा करने के उपरान्त ही निर्माण कार्य हो सकेगा। वर्तमान गुफा में सिद्ध मूर्ति की स्थापना व पूजा का क्रम आरम्भ किया गया। सोलासिंगी धार में स्थापना के कारण यह स्थान बाबा सोलासिंगी सिद्ध के नाम से विख्यात हुआ। तभी किले का निर्माण पूरा हो पाया। बाबा बालक नाथ जाने वाले बहुत से श्रद्धालु पहले यहां आते हैं, उसके बाद ही दियोटसिद्ध जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि यह सिद्ध बालकनाथ जी से बड़ा है।

यहां सामान्य पूजा प्रतिदिन की जाती है। रविवार को विशेष पूजा स्नान, धूप, ज्योति व वाद्ययन्त्रों के साथ की जाती है। विशेष पूजा के अवसर पर विशेष पूजा मन्त्र जिसे 'अगवाह' कहा जाता है, पढ़ा जाता है —

आद बाबा सोलासिंगी सच्चे बादशाह पूरा है,
उच्चे पहाड़ साथ रैन्हदे मारियां किलकां पर्वत तोड़े
डाडी गुफा बणा के बैठे सब की पुकार सुणदे
सोला शंख सोला धूणियां, बाबा सोलासिंगी सबदी आस पूरी करो।

रविवार को बाबा जी का विशेष दिन माना जाता है। विवाह, पुत्र जन्म व अन्य कोई शुभ कार्य होने पर आसपास के गांवों के लोग जात्रा (यात्रा) के रूप में बैंड बाजे लेकर यहां पहुंचते हैं।

***वाद्ययन्त्र :*** टमक, ढोल, नगारा, घण्टियाँ, शंख, छैणे आदि।

***पूजा सामग्री :*** गुग्गल धूप, धूप, घी, गुड़, ज्योति, बावड़ी का जल, फूल आदि।

***पुजारी परम्परा :*** ब्राह्मण-भट्ट रत्न भारद्वाज जो कि ज़रोला गांव के निवासी हैं।

२. ***सिद्ध बाबा नागनाथ :*** सिद्ध परम्परा में बाबा नागनाथ का भी प्रमुख स्थान माना जाता है। बाबा नागनाथ जी का मन्दिर सोलासिंगी धार की तलहटी में सोलासिंगी किले के नज़दीक चामुखा गांव के बिल्कुल नीचे गांव मढूँ तहसील बंगाणा जिला ऊना में है।

बाबा नागनाथ के नामकरण व मन्दिर स्थापना के सम्बन्ध में जो कथा प्रचलित है वह मन्दिर के वर्तमान पुजारी (चेला) श्री मेहर चन्द गांव डोहगी ने सुनाई जो कि इस प्रकार से है— ''किसी माता के दो पुत्र हुये। एक नाग तथा एक लड़का। कुछ दिनों तक माँ द्वारा दोनों का पालन पोषण समान रूप से किया जाता रहा। एक बार उनका घर जल गया।

बच्चा और नाग कूड़े के ढेर में छुपे हुये थे। वहां से एक कुतिया ने उन को ढूँढ निकाला। इस पर उनकी माँ ने कहा कि इनकी जो औलाद होगी वह कुतिया की पूजा करेगी। एक दिन नाग अन्धेरे में कुण्डली मार कर बैठा था तो माँ ने दाल से भरा गर्म पतीला अनजाने में उसके ऊपर रख दिया जिससे नाग मर गया। उसके बाद उसका भाई लड़का भी मर गया। यह घटना मढ़ूँ गांव में ब्राह्मण परिवार में घटी, वे दु:खी होकर गांव छोड़कर चले गये। दूसरी जगह बसने पर उनके कुल में किसी व्यक्ति के शरीर में आग पैदा होने लगी। तब एक योगी ने उनको इसका कारण पितृ कोप बताया तथा गांव मढ़ूँ जहां नाग के जलने की घटना घटी थी, वहां नाग नाथ की स्थापना करके पूजा करने की हिदायत दी। तब यहां मढ़ूँ गांव में ऊँचे टीले पर नागनाथ का मन्दिर व मूर्ति स्थापित की गई। बाबा जी की पाषाण प्रतिमा, बाबा की खड़ाऊँ आदि यहां विद्यमान हैं। प्रतिदिन धूप, ज्योति आदि से पूजा होती है। विशेष पर्वों पर विशेष पूजा का विधान है। बाबा जी को रोट, पैसे व अनाज बगैरा चढ़ाया जाता है। विवाह, पुत्र जन्म व अन्य शुभकार्यों पर यहां उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है। भाद्र कृष्ण दशमी को सिद्ध का मेला आयोजित होता है। समीपवर्ती गावों के लोग बाबा जी को रोट चढ़ाते हैं।

*बाबा नागनाथ जी की स्तुति एवं प्रार्थना :*

ऊँ गुरु वासना, जहां वासना तहां थापना, जहां थापना तहां देवता, जहां देवता तहां भगवान त्रिलोकी नाथ अन्तर्यामी श्रद्धा मन की पूरी करें। नानक ताका दास है। विन्द विन्द च कूटे। आओ सिद्धों का मता, अनन्त कोटि सिद्धों का मता। ऊँ नम: शिवाय नम: नारायणाय। जै-जै सीता राम, हिन्दू को राम-राम, सांई को सलाम, पूर्वे पच्छिमे दखिणे ते उत्तरे, चारधाम तेरे आगे अरदास, भूलचूक माफ कर, सच्चा साहब, सच्ची नाईं सच्चे दी सच्ची बड़ाई, हे गुरु महाराज .......।

ऐसी मान्यता प्रचलित है कि, बाबा नागनाथ जी के पास आस-पास के सात सिद्ध इकट्ठे होकर सिद्धि व ज्ञान की चर्चा किया करते थे। इन सात सिद्धों के पानी पीने के लिये सात बौड़ू अलग-अलग थे जिनके अवशेष आज भी गांव मढ़ूँ के श्मशानघाट के पास देखे जा सकते हैं।

*३. बाबा औघड़नाथ आसरी वाला सिद्ध :*

प्रसिद्ध देव स्थान पिपलू से लगभग दो कि.मी. की दूरी पर जंगल के बिल्कुल बीच में एक सुन्दर प्राकृतिक गुफा है। यही गुफा बाबा औघड़नाथ जी का स्थान है। यहां पास ही एक झरना है जिसका पानी गुफा के ऊपर से गुज़र कर नीचे लगभग १०० फुट नीचे गिरता है व सुन्दर जलप्रपात बनाता है। यह स्थान 'आसरी' के नाम से प्रसिद्ध है। संभवत: यहां कभी बाबा जी का आश्रम रहा होगा तथा आश्रम से ही बिगड़कर आसरी शब्द प्रचलित हुआ होगा।

ऐसा सुना जाता है कि, गांव ऐसन, डाकघर जसाणा, तहसील बंगाणा, जिला ऊना जो कि आसरी गुफा से नीचे उतर कर लगभग दो कि.मी. दूर है, वहां के किसी

ब्राह्मण को रात में स्वप्न हुआ कि गांव ऐसन में आम के वृक्ष के नीचे जो एक पत्थर की पिण्डी पड़ी हुई है, वह ससम्मान उठा कर आसरी की गुफा में स्थापित की जाये व वहां पर सिद्ध परम्परा से उसकी पूजा प्रारम्भ की जाए। स्वप्न में यह भी दृष्टान्त हुआ कि मैं स्वयं बाबा औघड़नाथ बोल रहा हूँ। तब गांव के ब्राह्मणों ने यहां उस पिण्डी की स्थापना की तथा क्षेत्र के प्रसिद्ध तान्त्रिक (चेला) तोता निवासी गांव ठाणा (झिकला) को इसकी पूजा का कार्यभार सौंपा। यह घटना आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व की है। आज भी चेला तोता के वंशज यहां नियमित पूजा का कार्य कर रहे हैं। सामान्यत: पूजा रविवार को की जाती हैं तथा उसी दिन श्रद्धालु गुफा में आते हैं। बाबा जी को रोट, प्रसाद, पैसे, अनाज आदि भेंट किया जाता है। पहले बकरा चढ़ाने की प्रथा थी भी, परन्तु अब बकरे के स्थान पर कड़ाह चढ़ाया जाता है।

बाबा जी की पिण्डी को स्नान, धूप, देशी घी का दीपक, ज्योति आदि से पूजा की जाती है। यहां बाबा जी का धूना भी है जिसमें चिमटा गड़ा है तथा संगल, चिमटा, त्रिशूल, खड़ाऊँ आदि बाबा जी के प्रतीक भी है। भाद्र मास की कृष्ण एकादशी को मेला होता है। इस दिन पुजारी (चेला) को खेल आती है तथा पुछें भी देते हैं। लोग बाबा जी को रोट की भेंट चढ़ाते हैं। बाबा जी की स्तुति एवं प्रार्थना में नौ नाथ चौरासी सिद्धों का भी जिक्र किया जाता है।

***लच्छमण जती (यति) सिद्ध —गांव सम्मा :***

तहसील बंगाणा जिला ऊना में सोलासिंगी धार के ऊपर पिपलू से दो कि.मी. की दूरी पर स्थित है, गांव सम्मा। यहीं पर घने वृक्षों, लता कुंजों के बीच एक विशाल पाषाण शिला की गुफानुमा ओट में लच्छमण जति सिद्ध की स्थापना है। यहां चार पाषाण की मूर्तियां प्रतीक रूप में रहती हैं। एक मूर्ति का आकार अन्य तीन मूर्तियों से कुछ बड़ा है। यह बड़ी मूर्ति ही लच्छमण जति की कही जाती है तथा बाकी तीन मूर्तियाँ उनके साथियों या चेलों की है।

इस सिद्ध स्थान की स्थापना परम्परा से कहीं से सिद्ध की पिण्डी लाकर की गई है। लच्छमण जति के मन्दिर और भी कई स्थानों पर जैसे गांव वकैण (कोटधार), गांव बैरी हटली तथा नैनादेवी धार में है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण कालीन भगवान राम के भाई लक्ष्मण जी ने कठोर ब्रह्मचर्य व्रत अपनाकर व कठोर तप करके यति के रूप में मान्यता पाई व जनमानस में श्रद्धा स्वरूप उनकी पूजा का प्रचलन हुआ। गुरु गोविन्द सिंह के विचित्र नाटक में भी वर्णित है कि लच्छमण जति ने हेमकुंट साहिब में तपस्या की है।

*प्राचार्य*
*राजकीय संस्कृत महाविद्यालय*
*चकमोह, जिला हमीरपुर*
*हि०प्र०*

# भारत की प्रथम नगरपालिका वाला नगर

ललित शर्मा

दक्षिण–पूर्वी राजस्थान के झालावाड़ जिला मुख्यालय से सात कि.मी. दक्षिण की ओर स्थित 'झालरापाटन' ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और व्यापारिक महत्त्व से सम्पन्न राजस्थान और मालवा प्रदेश का सीमावर्ती एवं सुनियोजित ढंग से बसाया हुआ एक गरिमामय नगर है, जिसे 'झालरापत्तन' भी कहते हैं।

इन नगर की स्थापना कोटा के तत्कालीन प्रधानमंत्री, 'झाला जालिम सिंह' (प्रथम) द्वारा परकोटा बनवाकर की गई थी।[१] पूर्व में इस स्थल पर भीलों के कुछ झोंपड़े मात्र थे।[२] झालरापाटन की सुरक्षा के लिये बनवाये गये पुरातन परकोटे में जिन असंख्य सुन्दर पाषाण प्रतिमाओं और अलंकरण युक्त स्तंभों को चुना गया है, वे सब झालरापाटन की जातक और निकटवर्ती गुप्तयुगीन चन्द्रावती नगरी के खण्डित अवशेष हैं।[३] झाला जालिम सिंह चूंकि अठारहवीं सदी में राजपूताने के एक महत्त्वपूर्ण और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे, अत: उन्होंने अपनी दूरदर्शिता से इसे स्थापित कर जयपुर नगर की भांति संवत् १८४९ (१७९२ ई.) में इसको बसाया।[४] चौड़ी और समकोण सड़के, सुन्दर और विशाल हवेलियाँ, आवासों में सड़क की ओर खुलने वाले हवादार झरोखे, सुन्दर देव मन्दिर, तालाब, पाल, उपवन, गोमती सागर किनारे खूबसूरत महल, झरोखे निर्मित किये गये।[५] इन सभी की क्रियान्विति के लिए स्वयं जालिमसिंह अनेक वर्षों तक यहां पड़ाव डाले रहे। झालरापाटन के बसने पर उन्होंने इसमें १७९६ ई. में एक अभिलेख द्वारा स्वायत्त शासन से लोकतंत्र के प्राण फूंककर इसे जीवंत बना दिया था।[६] उन्होंने यहां चांदी और तांबे के सिक्कों की टकसाल भी कायम की थी, जिसमें पहले कोटा तथा बाद में झालावाड़ राज्यों के नये व पुराने मदनशाही सिक्के बनते (ढलते) थे।[७] इन्ही कारणों से झालरापाटन, झालावाड़ राज्य की राजधानी एवं मालवा का प्रसिद्ध व्यापारिक नगर रहा। 'झालारापाटन' अथवा 'झालरापत्तन' नामकरण के मूलत: दो आधार है – प्रथम, वह झालरों (घंटियों) की ध्वनि, जो यहां के क्षेत्र में १०८ देव मन्दिरों में प्रतिदिन प्रात: व सायंकाल देव पूजा के समय होती थी (इतिहासकार जेम्स टॉड ने इसी कारण झालरापाटन को ***'सिटी ऑफ बैल्स'*** कहा था।[८] दूसरा, झाला राजपूत शासकों द्वारा इस नगर का विविध क्षेत्रों में विकास करवाना। सारत: झालरों की झंकार और झाला राजपरिवार, दोनों ही यहां आज तक कायम है तथा इसके नाम को सार्थक किये हुए है।

मूलत: चन्द्रावती नगरी और बाद में झालरापाटन दोनों ही प्राचीन काल से उत्तर व दक्षिण भारत के व्यापारिक केन्द्र रहे हैं।

### *कर्नल जेम्स टॉड की झालरापाटन यात्रा* [९]

इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने अपनी भ्रमण–यात्रा के दौरान झालरापाटन में १२ दिसम्बर, १८२१ ई. में आकर अपनी डायरी में यह वृत्तांत लिखा कि – ''झालरापाटन को कोटा के प्रधानमंत्री झाला जालिमसिंह ने बसाया था।'' मेरे आधा कोस दूर पहुंचने पर यहां के सम्माननीय नागरिक, पंचायत समाज तथा अन्य धनाढ्य व्यक्ति मेरी अगवानी के लिये आये। ***टॉड ने इसी क्रम में आगे लिखा कि ''समस्त भारतवर्ष के बीच मैंने केवल यहां पर (झालरापाटन में) इस समय नगरपालिका की स्वायत्त शासन की रीति को प्रचलित देखा।''*** यहां के स्वायत्त शासन के बारे में टॉड ने आगे लिखा – ''मैं मुहूर्त के लिये प्रधान मैजिस्ट्रेट शाह मनीराम के घर गया तथा उनके सामने यहां की (नगर की) सुन्दरता, कुशल प्रशासन और वृद्धि के लिये अपना आत्म संतोष प्रकट किया।'' टॉड ने आगे लिखा कि ''कोटा के प्रधानमंत्री जालिमसिंह ने कोटा राज्य के सबसे अधिक अराजकता के समय में भी सुअवसर देख कर दूसरे राज्यों में रहने वाले धनवान निवासियों को झालरापाटन में बसने के लिए लिये बुलाया। जालिमसिंह ने इस हेतु जो प्रतिज्ञा की। उसे उसने यहां के निवासियों को स्वायत्त शासन दान करके बुलाया और पूरा किया।'' टॉड ने लिखा कि ''जालिमसिंह ने झालरापाटन को मुख्य और प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बनाने में और इसे आबाद करने के उद्देश्य से सब प्रकार के कर (टैक्स) चुंगियाँ माफ कर दी थी। साथ ही यहां पर बसने वालों के लिये किसी प्रकार के अपराध के लिये सवा रुपये से अधिक का जुर्माना न होने का वचन दिया था।'' इस स्वायत्त शासन के बारे में टॉड ने एक शिलालेख होने के बारे में भी लिखा। उसने इस बारे में यह रेखांकित किया कि जालिमसिंह ने यहां के निवासियों को यहां के स्थायी शासन–व्यवस्था का भार सौंप दिया था और पंचायत समाज ने उस भार को स्वयमेव मानते हुए कार्य किया। इस पंचायत सभा में नगर–निर्णय लेने हेतु सभी जातियों के अनुभवी एवं सम्माननीय व्यक्तियों की भागीदारी थी। एक बुजुर्ग के अनुसार झालरापाटन के गोपीनाथ मन्दिर में पहले जातीय पेचीदा मसलों के न्याय की अदालत संचालित होती थी।

### *स्वत्वदान और माफियों का शिलालेख* [१०]

झालरापाटन के नागरिकों को प्रदान किये गये स्वत्वों और माफियों की सनद का एक शिलालेख जो कर्नल टॉड के कथन को दूसरे तरीके से पुष्ट करने वाला है, का वर्णन निम्न प्रकार है। यह लेख यहां के सूर्य मन्दिर में लगा था।

१. संवत् १८५३ (सन् १७९६ ई.) तदनुसार शक संवत् १७१८, दक्षिणायन सूर्य, शरद ऋतु, कार्तिक शुभ–मास, शुक्ल पक्ष पूर्णिमा, चन्द्रवार (नवम्बर १७, १७९६ ई.)।

२. महाराजाधिराज श्री उम्मेदसिंह देव (कोटा) फौजदार राज जालिमसिंह और कुँवर माधोसिंह आज्ञा करते है (कि) — झालरापाटन के समस्त निवासियों, पटेलों, पटवारियों, महाजनों और समस्त छत्तीस जातियों को यह लिखा जाता है (कि)।

३. इस समय पूरा भरोसा रखो, धन बनाओ और रहो।

४. बस्ती में सभी प्रकार के जबरन बसूल होने वाले 'कर' तथा जब्तियाँ, सदा के लिये उठा दी गई है। भलमन्सी, अन्नी और रेख (बराड़) नाम के महसूल और इसी भांति बैठ बेगार भी अब नहीं लिये जावेंगे। इस अभिप्राय से यह पाषाण (शिलालेख) खड़ा किया गया है कि यह (आज्ञा) साल दर इस समय और आगे के समय के लिये कायम रहेगी। इस इलाके में अब कोई मारधाड़ नहीं होगी। इस बात को हिन्दू के लिये गाय और मुसलमान के लिये सूअर की शपथ ली जाती है और यह (सनद) कप्तान दलैलखाँ, चौधरी, रूपचन्द लालू, महेसरी (माहेश्वरी), पटवारी बालकिसन, शिल्पकार कालूराम (सिलावट), मूर्तिकार बालकिसन की मौजूदगी में (लगाई गई)

५. परमोह (नगरवासियों को मनमाने भाव से नाज़ दिलवाना) सदा के लिये बंद कर दिया जाता हैं जो कोई पाटण (झालरापाटन) नगर के भीतर रहता है और वाणिज्य करता है उस पर जो (राज्य क्षेत्र की) चुंगी लगती (है) उसकी आधी मुआफी की जाती है और मापे (नपती) को सब कर सदा के लिये छोड़ दिये जाते हैं।

ज्ञातव्य कि उक्त शिलालेख में रेख (बराड़) महसूल दो प्रकार के कर थे। प्रथमतया ये 'निजाम जरी बाब' अर्थात् स्थानीय कर थे, दूसरी ओर 'जरी बाब बराड़' सेटलमेंट का 'कर' था।

*पुरातात्त्विक और धार्मिक स्थल*

झालरापाटन के हृदय स्थल पर स्थित भव्य, कलात्मक एवं विशाल पद्‌भनाभ मन्दिर (सूर्य मन्दिर) भारत के प्राचीन, विशाल और गिने चुने मन्दिरों में से एक है। इसका स्थापत्य दसवीं सदी का है।[११] १६वीं सदी में इस देवालय का जीर्णोद्वार हुआ एवं १८वीं सदी में पुनः इसका उद्‌यापन हुआ।[१२] इसके पूर्वी द्वार के दोनों ओर दो कलात्मक पाषाणी छतरियाँ निर्मित की गई थी।

इस मन्दिर में प्रागीव शैली का सभा मण्डप[१३] है जिसमें तीन ओर प्रवेश द्वार है। मुख्य विशाल द्वार पूर्वाभिमुखी है। सभी तोरण द्वार प्राचीन स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने है। सभा-मण्डप में ५२ विशाल और कलात्मक अष्टकोणीय स्तम्भ है।[१४] उन पर भारसाधक रूपी गठीले, बदन के सुन्दर कीचक बने हुए है। इनके ऊपर लघु मकराकृतियाँ मनमोहक रूप में हैं। स्तम्भों के ऊपर का वितान भाग १६वीं सदी का एवं अंतराल मण्डप का वितान समसामयिक है।[१५] मन्दिर के पृष्ठ की (मण्डोवर की) मुख्य रथिका में सूर्य की घुटनों तक जूते पहने केवल एक प्रतिमा है। मूल गर्भगृह में भगवान पद्‌भनाभ (विष्णु) की

काले पाषाण की लघु प्रतिमा प्रतिष्ठित है। मन्दिर का ९७ फीट ऊँचा गर्वोन्नत शिखर कमल के मानिन्द खुलने वाला है। इसके चारों ओर भूतल से कुछ ऊपर तक सात–सात शृंग होने से यह सात सुरलियों का देवालय भी कहा जाता है। मन्दिर के गर्भगृह की उत्तरांग पट्टिका पर शिव–तांडव की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसके साथ मातृकाओं की भी प्रतिमाएँ हैं। यहां एक लघुलेख वि.सं. १६३२ का है जिसमें 'सूत्रधार' का नामोल्लेख है।[१६] मन्दिर के मूल गर्भगृह का बाहरी भाग सुन्दर कलात्मक ढंग से सज्जित है। इसमें नीचे गज व शार्दूल तथा उनके ऊपर देवी प्रतिमाएँ तथा उनके ऊपर गंगा–यमुना की प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह के बाहर अंतराल की रथिकाओं के ऊपरी भाग में शिव–पार्वती तथा कुबेर–दमयंती की प्रतिमाएँ हैं।

मन्दिर के ऊपरी भाग में इंच–इंच का स्थान 'सुन्दर प्रतिमाओं' से सजा हुआ है। इसमें दक्षिण पक्ष की ओर गणेश और उत्तर पक्ष की ओर बांसुरी बजाते कृष्ण की प्रतिमा है। इसी क्रम में यहां शिव–विवाह, विष्णु, पार्वती, हिरण्यकश्यप वध, वराह की भी प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर के ऊपरी मध्य गुम्बद के चारों ओर पाषाणी छत्रियों में आदमकद तीन नागा साधु व एक नागा साध्वी की सुन्दर प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। सारत: मन्दिर का गर्भगृह, अंतराल, सभा मण्डप एवं तीन ओर के तोरण द्वार क्रमश: देलवाड़ा, कोर्णाक ओर खजुराहो की कला के समन्वयी स्वरूप हैं। रायकृष्णदेव ने इस मन्दिर के विशाल शिखर, मेरु, मण्डोवर, स्तंभों पर घटपल्लवों के अंकन तथा पंचशाखा के सर्पवेष्ठित कला द्वार के आधार पर इसे 'कच्छपघात शैली' का बताया है।[१७]

इसी मन्दिर के निकट ११वीं सदी में बना एक भव्य और विशाल श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है।[१८] यह मन्दिर पूर्वाभिमुखी है। इसके गर्भगृह में काले पाषाण की ११ फीट लम्बी कार्योत्सर्ग मुद्रा में भगवान् शांतिनाथ की दिगम्बर प्रतिमा प्रतिष्ठित है। गर्भगृह के बाहर कालीमण्डप एवं गुढ़मण्डप बने हैं। इस मन्दिर में अनेक शैव और वैष्णव प्रतिमाएँ हैं। दिगम्बर जैन प्रतिमाओं के नीचे की रथिकाओं में चक्रेश्वरी व गजलक्ष्मी की प्रतिमाएँ हैं। गुढ़मण्डप के स्तम्भों पर देव प्रतिमा और पुरुष युग्म बने हैं। इसके वितान का जीर्णोद्वार १८वीं सदी में किया गया था।[१९] मन्दिर का सभामण्डप व बाहर का आवरण प्राचीन स्थापत्य कला की अनुपम थाती है। इस मन्दिर में चीनी कोड़ी मिश्रित लेप से पाषाण के दो सफेद गज अपनी ऊँची सूंड उठाये मन्दिर के द्वार पर स्थापित हैं। इस मन्दिर को शाह पीपा नामक व्यक्ति ने संवत् १०४६ में बनवाया था। तब इसकी प्रतिष्ठा (प्रतिमा की) भवदेव सूरी ने की थी।[२०] यहां एक अन्य प्रसिद्ध देवालय वल्लभ सम्प्रदाय के द्वारिकाधीश भगवान् का है। इसे झाला जालिमसिंह ने झालरापाटन की स्थापना के समय ही गोमती सागर तालाब के किनारे सघन वृक्षों के मध्य बनवाया था।[२१] यहाँ दो देव प्रतिमाएँ स्थापित हैं, जिनमें से द्वारिकाधीश की काले पाषाण की प्रतिमा झालरापाटन के

एक स्थल से खुदाई में प्राप्त हुई थी। दूसरी प्रतिमा नवनीत प्रियाजी की है, जिसे झालावाड़ राज्य के प्रथम महाराज राणा मदनसिंह झाला द्वारा शीश पगड़ी में यहां लाकर प्रतिष्ठित की गई थी।[२२] मन्दिर में दोनों देवविग्रह प्रतिष्ठित है तथा पुष्टिमार्गीय पद्धति से इनकी पूजा होती है। यह देवालय हवेलीनुमा हैं तथा आरंभ से ही झाला राजपरिवार का रहा है।

विगत सदी के चतुर्थ दशक में यहां के देशभक्त और विद्यानुरागी राजराणा राजेन्द्रसिंह 'सुधाकर' ने कर्मवीर गांधी के अछूतोद्वार की संकल्पना को सर्वप्रथम भारत भर में इसी मन्दिर में साकार कर सारे देश का ध्यान इस नगर की ओर खींचा था।[२३] अस्पृश्यता उन्मूलन तथा हरिजनों के इस मन्दिर में प्रवेश कराने के लिए उनका सत्याग्रह इतना दृढ़ एवं अटल था कि इस मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश कराने पर उनका जब स्वर्णों द्वारा व्यापक विरोध हुआ तो वे अपनी कटिबद्धता के कारण उस घड़ी से मृत्युपर्यन्त फिर कभी इस मन्दिर में नहीं गये जहां राजसी परम्परा के अनुसार वर्ष में एक बार तो झाला शासक को जाना ही पड़ता था।[२४] राजराणा राजेन्द्रसिंह ने यह क्रांतिकारी कदम भावावेश में नहीं उठाया था। वास्तव में अछूतों के प्रति अन्याय उन्हें असहनीय था। उन्हें विश्वास था –

*आयेगी स्वराज सिद्धि, हाथ जोड़ आगे।*
*भारत की यदि, छुआछूत छूट जायेगी।।*[२४]

इस विशाल जनघटना से प्रभावित होकर तब पं. नेहरू की भाभी राजेश्वरी नेहरू स्वयं यहां आई थी।[२५] इस नगर के उत्तर में पहाड़ी पर एक अधूरा किला 'नौलक्खा' बना हुआ है। जिसे झालावाड़ राज्य के महाराज राणा पृथ्वीसिंह ने १८६० ई. में नौलाख रुपये की लागत से बनवाया था।[२७] इसका निर्माण गागरोन गढ़ के प्रतिरोध के रूप में किया गया था। किले का मुख्य द्वार पूर्वाभिमुखी है। इसके ऊपर की ओर दो सुन्दर छतरियाँ बनी हुई हैं। दो तेल की बड़ी टंकियां और सिंहद्वार पर दो हाथियों की सूंड में पाईप लगे हैं। जो गरम तेल शत्रु पर डालने के काम में आते थे।[२८] किले की आंतरिक दीवारों में सैनिकों के लिये तिबारियाँ और तोपों के लिये बुर्जियाँ बनी हुई हैं।

झालरापाटन ने अपने उद्भव से देश की आजादी होने तक एक अनूठी रश्मिगाथा जोड़ी थी, जब तांत्याटोपे १५ अगस्त १८५८[२९] को विद्रोह का बिगुल बजाते यहां आये तो उनके उद्घोष पर यहां की सामन्ती सेना ने उन्हें अंगीकार करते हुए बगावत की और वह स्वातंत्र्य–समर–वाहिनी में सम्मिलित हो गई। झालरापाटन की सामन्ती सेना और जनता द्वारा तांत्या को पर्याप्त संख्या में घोड़े, गाड़ियाँ रसद सामग्री व ३२ तोपें एवं राजराणा की ओर से १५ लाख रुपये दिये गये,[३०] जिससे तांत्या को बहुत ताकत मिली।

झालरापाटन साहित्यिक सम्पदा का भी अकूत खजाना रहा है। इसे कई

साहित्यकारों की जन्म व कर्म स्थली होने का गौरव प्राप्त है। द्विवेदी युग के मूर्धन्य हिन्दी विद्वान् और क्रान्तदृष्टा कवि-मनीषी पं. गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' ने महात्मा गाँधी की 'हिन्दी स्वदेशी' अपनाने का प्रथम मंत्र इसी नगर से दिया था। पं. शर्मा की साहित्य साधना पराधीन भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रबल समर्थक रही। राष्ट्र को सही दिशा देने के लिये १९१८ ई. में देहली में स्थापित 'राजपूताना मध्यभारत सभा' के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता पं. शर्मा ने ही की थी। टैगोर की प्रसिद्ध कृति गीतांजलि का प्रथम हिन्दी पद्यानुवाद व उमर खय्याम की रूबाईयों का संस्कृत अनुवाद पं. शर्मा ने ही किया था, जिससे कवि बच्चन ने प्रेरणा पाकर मधुशाला के प्याले हिन्दी-प्रेमियों को पिलाये।[३१]

झालरापाटन की बनी 'फैणियाँ' (मिठाई) एवं गुलकंद मेहमानवाजी के लिये काफी प्रसिद्ध हैं। यहां की बनी पाषाण की देव प्रतिमाएँ भी दूर-दूर तक जाती है। यह नगर जयपुर-इन्दौर मार्ग पर स्थित है, जो भौगोलिक स्वरूप में २४°.३२ उत्तरी अक्षांश व ७६°.१६ पूर्वी देशान्तर में स्थित है।[३२] इस नगर को व्यापारिक और साहित्यिक क्षेत्र में मालवा में प्रसिद्ध बनाने में यहां के सेठ बिनोदीराम बालचन्द के नेमीचन्द सेठी, लालचन्द सेठी का उल्लेखनीय योगदान रहा, जिसकी चर्चा आज भी यहां के लोगों की जुवां पर जीवित है।

***संदर्भ ग्रन्थ सूची***


१. श्यामलदास कविराजा, वीर-विनोद (द्वितीय भाग-द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १४६२ प्रकाशक – मोतीलाल बनारसी दास (दिल्ली) पुर्नप्रकाशन १९८६।

२. पूर्वोक्त वही पृष्ठ वही

३. ढोढीयाल बी.एन. – झाालावाड़ स्टेट गजेटियर, (१९६४) पृष्ठ २८७, प्रकाशक – गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, जयपुर।

४. जिदाणी, इन्द्रमल अमोलक चन्द – तवारीख राज झालावाड़ (१९१२) पृष्ठ १८, प्रकाशक – जैल प्रेस, छावनी (झालावाड़)

५. टॉड, कर्नल जेम्स – एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटिज ऑफ राजस्थान (पुर्नप्रकाशन १९८७) भाग–३, पृष्ठ १७८२, प्रकाशक – मोतीलाल बनारसी दास (दिल्ली)

६. झालावाड़ के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित – झालरापाटन से प्राप्त वि.सं. १८५३ (१७९६ ई.) के अभिलेख से साभार।

७. मयंक मांगीलाल व्यास (अनुवादक) राजपूताने के सिक्के (वेबकृत) प्रकाशन वर्ष मुद्रित नहीं, पृष्ठ १२३-२५, प्रकाशक – कलम घर प्रकाशन, जोधपुर।

८. टॉड, कर्नल जेम्स पूर्वोक्त, पृष्ठ १७८२

९. मिश्र बलदेव प्रसाद (अनुवादक) राजस्थान का इतिहास (टॉड कृत) द्वितीय भाग – भ्रमण वृतांत, पृष्ठ १०७३-७५, प्रकाशक – श्री व्यैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई संवत् १९८२

१०. पालीवाल देवीलाल (सम्पादक) – राजस्थान मं सामन्तवाद (टॉड कृत) परिशिष्ट संख्या ११, पृष्ठ १५५ (वर्ष १९९२) प्रकाशक राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर (राज.)

११. वरदा (शोध पत्रिका) वर्ष १७, अंक – १, (जनवरी-मार्च, १९७४, पृष्ठ ८, प्रकाशक – राजस्थन

साहित्य समिति बिसाऊ (राज.) में सोमानी रामबल्लभ का लेख – 'कच्छपघात शैली का विकास'
१२. पूर्वोक्त वही ..
१३. शोध – समवेत (शोध पत्रिका) – संख्या १२ नं. ३,४, अक्तूबर-दिसम्बर २००३ एवं जनवरी-मार्च, २००४ (संयुक्तांक) 'सूर्य मन्दिर झालरापाटन' पृष्ठ १०५, प्रकाशक – श्री कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)
१४. प्रोग्राम रिपोर्ट ऑफ द आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, फार द ईयर एण्डिंग ३० जून, १९०५ – पृष्ठ ३२-३३ प्रकाशक इण्डोलाजिकल बुक हाउस, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष अज्ञात।
१५. उपरोक्त वही
१६. उपरोक्त वही
१७. उपरोक्त वही
१८. ढोढीयाल बी.एन. पूर्वोक्त, पृष्ठ १०
१९. वरदा (शोध पत्रिका) पूर्वोक्त, पृष्ठ १०
२०. भारद्वाज डॉ. शांतिलाल (सम्पादक) हाड़ौती का पुरातत्व, (१९८९ – प्रथम संस्करण) पृष्ठ ४३, प्रकाशक – हाड़ौती शोध प्रतिष्ठान, कोटा (राज.)
२१. वीर-विनोद, पूर्वोक्त, पृष्ठ १४६८ एवं झालावाड़ स्टेट गजेटियर, पूर्वोक्त पृष्ठ ६
२२. पूर्वोक्त, वही
२३. पथिक, – ज्ञानेन्द्र, मुंह बोलता झालावाड़ (सितम्बर १९८४) पृष्ठ ८, प्रकाशक सर्वेश्वरदत्त, कविराज, हवेली, झालावाड़।
२४. पूर्वोक्त, वही
२५. निर्मोही – जितेन्द्र (सम्पादक) श्री राजेन्द्रसिंह सुधाकर स्मरणांजलि स्मारिका (१९९३) पृष्ठ ६, प्रकाशन – साहित्य समिति, झालावाड़
२६. पूर्वोक्त वही
२७. झालावाड़ स्टेट गजेटियर, पूर्वोक्त, पृष्ठ २८९
२८. तवारीख राज झालावाड़, पूर्वोक्त, पृष्ठ ४९ एवं मंगलानी एच.जे. – हिस्ट्रीकल्चर एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ झालावाड़ स्टेट (१९८८) पृष्ठ २७-२८, प्रकाशक – जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर (राज.)
२९. सिंह रघुबीर – मालवा के महान विद्रोहकालीन अभिलेख (फरवरी १९८६) पृष्ठ ३५३, प्रकाशन – श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ (मालवा)
३०. हिस्ट्री एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन – पूर्वोक्त वही
३१. चतुर्वेदी डॉ. नन्द (सम्पादक) मधुमती (सयुंक्तांक नवम्बर – दिसम्बर, १९८५) गिरधर शर्मा 'नवरत्न' विशेषांक से साभार, प्रकाशक – राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर (राज.)
३२. माल्कम सर जे., ए मेमायर ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया इन्क्लुडिंग मालवा एण्ड एडज्वाइनिंग प्राविन्सेस, विद् द् हिस्ट्री (संस्करण – १८८२) पृष्ठ ४१७, प्रकाशन अज्ञात

*जैकी स्टुडियो, १३ मंगलपुरा स्ट्रीट,*
*झालाबाड़ – ३२६००१ (राजस्थान)*

यात्रा वृत्त

# पालनपुर और आस-पास

चेतराम गर्ग

गुजरात समृद्ध ऐतिहासिक परम्परा और वैभवशाली संस्कृति का पोषक राज्य है जो वर्तमान में बहुआयामी विकास के कारण भारत ही नहीं, विश्वभर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना की साधारण सभा की बैठक उत्तरी गुजरात के बांसबाड़ा जिला के जिला केन्द्र पालनपुर में कलियुगाब्द ५११३ आषाढ़ कृष्ण ९,१० - (२५,२६ जून, २०११) को जी.डी.मोदी विद्या संकुल पालनपुर में आयोजित थी।

आषाढ़ कृष्ण ७ (२२ जून) शाम को मैं शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर से जालन्धर श्री ओमप्रकाश प्रभाकर जी के पास आ गया था। ओमप्रकाश प्रभाकर नेरी संस्थान में आते रहते हैं। जालन्धर से आषाढ़ कृष्ण ८ (२३जून.२०११) को जम्मूतवी अहमदाबाद रेलगाड़ी मैंने पालनपुर के लिए ली। यह गाड़ी नियत समय पर जालन्धर सिटी से १:२० बजे अहमदबाद के लिए रवाना हुई। इस गाड़ी का मार्ग पंजाब को पार करते हुए राजस्थान के वीकानेर, आबू रोड़ स्टेशन होते हुए गुजरात के पालनपुर रेलवे स्टेशन पर पहुंचता है। जालन्धर से पालनपुर का यह सफर कुल ११०० किलोमीटर, ११ घण्टे में पूरा हो गया। तय समय से आधा घण्टा पूर्व ही गाड़ी १२: १५ मिनट पर पालनपुर रेलवे स्टेशन पर पहुंच गई।

रेलवे स्टेशन से जी.डी. मोदी, विद्या संकुल ५ किलोमीटर की दूरी पर है। व्यवस्था प्रमुख श्री गरीश भाई ठाकुर से बात करने पर उन्होंने कहा कि यदि हमारी गाड़ी समय पर नहीं पहुंचती है तो आप ऑटो करके, २०रुपये देकर विद्या संकुल आ जाना। गाड़ी के समय पूर्व पहुंच जाने के कारण मुझे लगा कि ऑटो में ही जाना चाहिए। मैंने ऑटो वाले को पूछा तो उसने भी मुझसे बीस रुपये ही मांगे। मैं तुरन्त तैयार होकर ऑटो में चढ़कर जी.डी.मोदी विद्या संकुल पहुंच गया। कोई १५-२० मिनट का समय लगा। बैठक स्थल पर मेरे से पूर्व श्री बालमुकुन्द जी, शरद हेबालकर जी आदि १०-१२ प्रमुख कार्यकर्ता पहुंच गये थे। प्रो. दामोदर झा जी भी पधार गए थे। हम दोनों साथ भोजन करने गए तथा आज के समय का सदुपयोग करने का विचार करने लगे। कुछ-कुछ विचार झा जी का भी माँ अम्बा जी के दर्शन को जाने का बन रहा था। मेरे पास दूसरे दिन दोपहर १२ बजे तक का समय था। मैं सारे समय का सदुपयोग करना चाहता था। यह क्षेत्र मेरे लिया नया था। इससे पूर्व यहां कभी आना नहीं हुआ था। माँ अम्बा जी के दर्शन तथा वहां के स्थानीय जीवन के बारे में जानने की चाह थी। डॉ. झा जी का कार्यक्रम स्थगित हो गया।

मुझे सारी आवश्यक जानकारी विनोद भाई से प्राप्त हो गई थी। विनोद भाई का दूरभाष नम्बर मैंने किसी भी परिस्थिति के लिए अपने पास लिख लिया था।

पालनपुर बस स्टैंड तक मैं टेम्पू में आया जिसका किराया ५ रुपये लगा। बस स्टैंड से माँ अम्बा के लिए निरन्तर १५-२० मिनट के अन्तराल पर बस मिल जाती है। मैंने ४ बजे बस ली। बस का किराया ५१ रुपये लगा। पालनपुर से माँ अम्बा जी की दूरी ६५ कि.मी. है।  बस में मैं पूरी तरह से वहां की भौगोलिक संरचना पर ध्यान गढ़ाए रखा। बस ६०-६५ कि०मी० प्रति घंटा की गति से चल रही थी। पूरी सड़क एक दम साफ-सुथरी, किसी प्रकार के कोई गढ़े नहीं। यह राज्य मार्ग है। सड़क के दोनों ओर नीम के बड़े–बड़े तथा घने पेड़ दिखाई देते हैं। सड़क पर उनकी छांव व सुन्दरता दोनों परिलक्षित हो रही थी। खेतों में काम करते लोग, कहीं पर फसल काटी हुई तथा कहीं पर फसल काटते हुए लोग दिखाई दे रहे थे। पपीते के पूरे खेत, एरण्ड की खेती, बाजरा, चौलाई आदि जगह–जगह पर थे। गेहूँ, सौंफ, राई, कपास तथा चना आदि निकाल लिया गया था। बाजरा, ज्वार, बैंगन, लौकी आदि फसलें लगाई हुई थी। आज गर्मी का एहसास नहीं हो रहा था क्योंकि आसमान में बादल थे। मैं गर्मी से डरा हुआ था। एक दिन पूर्व से ही सभी जगह बादल छाए हुए थे। मानसून आने की संम्भावना थी पर अभी तक वर्षा नहीं हुई थी। एक व्यक्ति से बात करने पर पता चला कि वर्षा के लिए जितना वायुमण्डल गर्म होना चाहिए था, वह नहीं हुआ है। बादल के होने के कारण मुझे चित्र खींचने में असुविधा हुई। रास्ते में जो मुख्य-मुख्य स्थान आए उनको मैं लिखता गया। ये सभी स्थान गुजराती भाषा में लिखे गए थे लेकिन लिपि का देवनागरी से सामीप्य होने से पढ़ने में कठिनाई नहीं आती। मेरवाड़ा, लोक निकेतन, गोला, यमनवास, हांताबाड़ा, सरस्वती नदी सूखी, मोटा सड़ा बिलबाड़ा, गंगवारोड़, मुहब्बतगढ़, पुछपुर, रतनपुर दांता, हरिवाव, त्रिशुलियाधार, होटल सरोवर आदि। स्थान एक खुले क्षेत्र से जैसे-जैसे आगे बढ़ते गए वैसे-वैसे वहां छोटी–छोटी पहाड़ियां आने लगी। धीरे-धीरे हमारी बस अरावली की पर्वत श्रृंखलाओं की ओर बढ़ती जा रही थी। ये पर्वत श्रृंख्लाएं राजस्थान से लेकर गुजरात के उत्तरी छोर को समेटे हुए हैं। गुजरात का वनवासी समाज इन पर्वत श्रृंखलाओं में ही रहता है। यह वनवासी समाज अपनी प्राचीन-संस्कृति को संजोए हुए है। महिलाएँ एक विशेष प्रकार का कुर्ता पहनती है। जिसमें फौजी जवान के कन्धे पर लगी पट्टी की ही तरह फूल से सजाया होता है। सुहागिन स्त्रियाँ बाजू में उपर तक चूड़ा पहनती हैं। यहां का वनवासी प्राय: धोती का प्रयोग करता है।  बस ज्यों ज्यों पहाड़ी की ओर जा रही थी त्यों त्यों वह कुछ हांप रही थी। ऐसा हिमाचल में कम ही होता है, क्योंकि हिमाचल में तो चढ़ाई से ड्राइवर का पाला हर समय पड़ता है। यहां तो जरा सी चढ़ाई ही आती है। अम्बा जी के पास पहुंचने से पूर्व ही दोनों ओर से पर्वत श्रृंखलाएं आमने-सामने आ गई। अब हम बिल्कुल पहाड़ी क्षेत्र में थे। हिमाचल के पहाड़ अधिकांशत: हरे-भरे होते हैं। उधर शुष्क पहाड़ दिखाई देते हैं। डेढ़ घण्टे की यात्रा कर हमारी बस अम्बाजी

बस स्टैंड पहुंची।

बस स्टैंड पर मैंने वापसी की चिन्ता कर बस का पता किया। यहां आखरी बस ६:३० बजे जाने वाली थी जबकि माँ अम्बा जी का मन्दिर ७:१५ पर खुलने वाला था। एक स्थानीय दुकानदार मेरे पीछे लग गया। उसने मुझे मन्दिर में जाने का रास्ता बताया। उसका मुख्य उद्देश्य अपने सामान (माँ जी की सेवा में चढ़ने वाली) सामग्री को बेचना था। उसने ६५ रुपये का समान मुझे दे दिया और मन्दिर में चढ़ाने को बता दिया। उसने कहा कि यदि मुझे रात को वहीं पर रुकना है तो यहां सस्ते में धर्मशाला मिल जाएगी। मन्दिर के मुख्य द्वार पर जाने पर पता चला कि मन्दिर में माँ के दर्शन ७:१५ बजे से पूर्व होना असम्भव है। मैंने श्री दिनेश भाई को पालनपुर दूरभाष किया और वहीं रहने के बारे चर्चा की। उन्होंने वनवासी कल्याण आश्रम के कार्य में लगे तारंग भाई को मेरे बारे में सारी जानकारी दे दी। आधे घण्टे में ही तारंग भाई मेरे पास मोटर साईकल लेकर आ गए। तारंग भाई वनवासी कल्याण आश्रम में वांसवाड़ा जिला मन्त्री का कार्य देख रहे हैं। तारंग भाई युवा है और उनकी बातचीत में पूरा विश्वास तथा शरीर में स्फुर्ति झलक रही थी। तारंग भाई भी कुछ वर्ष पूर्व वनवासी कल्याण आश्रम के विद्यालय छात्रावास में पढ़ा था। उन्होंने यह तय कर लिया था कि अब मैं भी इसी कल्याण आश्रम में काम करूँगा। अपने तीन बच्चों तथा पत्नी के साथ वह माँ अम्बा जी में चलने वाले कल्याण आश्रम के छात्रावास में रहते हैं।

उन्होंने कहा कि जब तक यह मन्दिर खुलता है तब तक हम माँ अम्बाजी के मूल स्थान को देखने के लिए चलते हैं। माँ अम्बाजी ५२ शक्ति पीठों में से एक है। मान्यता है कि माँ पार्वतीजी का हृदय यहां पर गिरा था। हम गब्बर पर्वत की ओर चल पड़े। वर्तमान मन्दिर अम्बाजी से गब्बर पर्वत ३ किलोमीटर की दूरी पर है। सांय के ६:३० बज चुके थे। मन्दिर तक जाने के लिए रज्जू मार्ग की व्यवस्था हैं परन्तु यह व्यवस्था ६:३० बजे तक ही रहती है। अब हम उस का इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। तारंग भाई थोड़ा परेशान हो गए। मैंने कहा तारंग भाई मैं पहाड़ी आदमी हूँ। मुझे पैदल चलने मैं कोई संकोच नहीं है। यह मात्र कोई आधे घण्टे का ही तो मार्ग है। आराम-आराम से ऊपर चढ़ेगे, बातचीत भी होती रहेगी तथा यात्रा का आनन्द भी उठाएंगे।

गब्बर पर्वत पर माता का मुख्य स्थान है। यह विशाल चट्टान ही पर्वत है। बहुत बड़ा घेरा है। मन्दिर चट्टान की चोटी पर है। इस से पूर्व एक शिव मन्दिर हैं जो एक चट्टान के अन्दर प्राकृतिक गुफानुमा है। अन्दर शिवलिंग स्थापित है तथा अन्दर एक चट्टान के नीचे से होकर दूसरे किनारे पर बड़ी सावधानी से निकला जाता है। चढ़ाई-चढ़ने का भी अपना आनन्द है। मुख्य मन्दिर यहां से चोटी पर ३०० मीटर की दूरी पर स्थित है। गब्बर पर्वत की परिक्रमा के लिए गुजरात सरकार की ओर से परिक्रमा पथ का निर्माण किया जा रहा है। जब हम मन्दिर में पहुंचे तब आरती का समय हो चुका था। पुजारी ने विधिवत् अपनी पूजा तथा आरती प्रारम्भ कर दी थी। इस समय दर्शन करने वालों की कोई बहुत

बड़ी भीड़ नहीं थी तो भी आने-जाने वाले ५० से ६० लोग वहां पर थे। हमने माता जी के दर्शन किये। यहां की लोक मान्यता के अनुसार भगवान कृष्ण के सर्वप्रथम बाल गब्बर पर्वत पर माता के श्री चरणों में उतारे गए थे। उसके बाद श्री कृष्ण का स्नान यहां के सरोवर में कराया गया था। यह शृंगी ऋषि की तपस्थली के रूप में भी प्रसिद्ध है। यहां पर शृंगी ऋषि का आश्रम था। मान्यता है कि राम और लक्ष्मण जब सीता माता जी की खोज में निकले थे तो वे इस गब्बर पर्वत पर माता के दर्शन करने आए थे। माता अम्बा ने प्रसन्न हो कर रावण को मारने के लिए श्री राम को अजय बाण दिया था। यहां की लोक मान्यता के अनुसार उसी अजय बाण से ही रावण का नाश हुआ था।

यहां के राजा भवानी सिंह परमार दाता स्टेट के राजा थे। वे माता के बहुत बड़े उपासक थे। उनके पुत्र पृथ्वी सिंह ने स्वतन्त्रता के बाद अपना राज्य भारत संघ में विलय कर लिया था।

यह मन्दिर अपनी भव्यता व माता की कृपा दृष्टि के लिए देश भर में प्रसिद्ध है। ३५८ स्वर्ग कलशों से सुसज्जित मन्दिर अपनी तरह का एक अनूठा मन्दिर है। मन्दिर में माता को नारियल चढ़ाया जाता है। वहां पर नारियल फोड़ने की विशेष व्यवस्था है। यह सब मन्दिर प्रांगण में ही हो जाता है।

इस मन्दिर में माता जी की मूर्ति न होकर यन्त्र की पूजा होती है। माँ हर तरह की मनोकामना पूरी करती है। माता की सवारी हर दिन बदलती है। सोमवार को नन्दी की सवारी, मंगलवार को सिंह की, बुद्धवार को हाथी की, गुरुवार को गरुड़ की, शुक्रवार को हंस की, शनिवार को गज की तथा रविवार को बाघ की सवारी होती है।

भाद्रपद मास की पूर्णिमा को यहां माँ के प्रगट्य दिवस माना जाता है। माता ने यहां महिषासुर का नाश किया था। इसी उपलक्ष्य में यहां भाद्र पूर्णिमा के सात दिवसीय मेले का आयोजन होता है। ३० से ३५ लाख लोग इन सात दिनों में यहां पधारते हैं। मेले की भव्यता अनूठी होती है, सभी धर्मशालाएँ, होटल आदि भर जाते है। माता की विशेष पूजा अर्चना होती है। बहुत लोग यहां दूर-दूर स्थानों से पैदल यात्रा कर के पहुंचते हैं।

***मान सरोवर*** – माँ अम्बाजी मन्दिर के पिछवाड़े एक किलोमीटर की दूरी पर एक सरोवर है, जिसे मानसरोवर कहते हैं। वर्तमान सरकार की बदौलत उसका रख–रखाव अत्यन्त भव्य है। सरोवर के एक और खुला उद्यान है तथा दूसरी ओर सुन्दर शाला बनी हुई है। श्री कृष्ण के बाल काटने के बाद इस मानसरोवर में स्नान करने की मान्यता हैं। आज भी हजारों लोग यहां पर आकर बच्चों के बाल कटवाते है तथा स्नान करवाते हैं।

***कोटेश्वर महादेव*** – माँ अम्बा से पूर्व दिशा की ओर ५ किलोमीटर की दूरी पर बहुत ही प्रसिद्ध तीर्थ स्थल कोटेश्वर महादेव जी हैं। यह स्थल यहां के वनवासी परिवारों के लिए अत्यन्त पवित्र है। यहां एक जल कुण्ड है जिसका जल सरस्वती नदी का माना जाता है। इस जल कुण्ड में ही यहां के वनवासी बन्धु अपने परिजनों की अस्थियाँ वर्ष में एक बार विसर्जित करते हैं। उसी समय वनवासी बन्धुओं का यहां बहुत बड़े मेले का आयोजन

होता है। लाखों लोग इस मेले में पधारते हैं। सरस्वती नदी का जल प्रवाह यहां प्राकृतिक है। जिसमें स्थान स्थान पर प्राकृतिक रूप में बने कुण्डों में लोग स्नान करते हैं।

इस सारे क्षेत्र में दूर-दूर तक संगमरमर की खानें देखी जा सकती हैं। संगमरमर से मूर्तियाँ बनाने का काम यहां निरन्तर चलता रहता है। कालू राम मूर्तिकार के घर पर हम थोड़ी देर के लिए रुके भी थे। कालूराम यहां आने से पूर्व राजस्थान में मूर्ति बनाने का काम करता था। कालू राम मूर्ति बनाने के साथ-साथ अपने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने में भी विशेष रूचि रखता है। कालू राम का एक लड़का वनवासी कल्याण आश्रम में पढ़ाई कर चुका था।

कोटेश्वर महादेव के मन्दिर से २०० मीटर की दूरी पर आदि कवि वाल्मिकि का आश्रम बना हुआ है। यहां आदि कवि बाल्मिकि के साथ ही लव और कुश की प्रतिमाएँ भी बनी हुई हैं। यहां पर एक विद्वान आचार्य का निवास स्थल भी है। आचार्य जी से हमारा परिचय हुआ। उन्होंने राष्ट्रीय चिन्तन एवं व्यावहारिक पक्ष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। उन दिनों स्वामी राम देव का अनशन तथा भ्रष्टाचार का मुद्दा जोरों पर था। उनका कहना था कि व्यावहारिक तौर पर समाज में संस्कार की प्रक्रिया खड़ी की जानी चाहिए। आचार्य जी ने हमें चाय पिलाई। दो तीन सज्जन वहां ओर भी बैठे हुए थे। वे भी स्वामी जी के अनशन की चर्चा कर रहे थे।

***कामाक्षी मन्दिर*** — कोटेश्वर महादेव से वापिस आते समय हम कामाक्षी मन्दिर के दर्शन के लिए चले गए। कामाक्षी मन्दिर ५२ शक्तिपीठों का एक समूह है। यह दक्षिण भारतीय शैली में बना हुआ है। यहां पर ५२ शक्ति पीठों का अलग-अलग उनकी स्थिति के अनुसार सभी वर्णनों सहित जानकारियों से परिपूर्ण मन्दिर की स्थापना हुई है। शंकराचार्य जी का इस मन्दिर निर्माण के पीछे का भाव यह रहा होगा कि लाखों की संख्या में यहां मां अम्बाजी के दर्शन के लिए आते हैं वे मां अम्बा के परिचय के साथ और ५१ शक्ति पीठों का ज्ञान भी प्राप्त करें।

***रिंछड़िया महादेव*** — यह स्थान अम्बा जी से ४ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां पर श्रावण मास की पूर्णिमा को मेला लगता है।

***गायत्री मन्दिर*** — गुजरात अनेक धार्मिक आन्दोलनों के लिए विख्यात है। स्वाध्याय परिवर, स्वामी नारायण आन्दोलन तथा गायत्री परिवार का फैलाव व प्रचार बड़े व्यापक स्तर में यहां पर हुआ है। यहां पर गायत्री मन्दिर आधुनिक कल्पना के आधार पर बने हैं। गुजराती परिवारों ने इसमें बढ़—चढ़कर भाग लिया है। १.२५ करोड़ गायत्री मन्त्र का लेखन इस मन्दिर में हुआ है। यह मन्दिर, माँ अम्बा जी मन्दिर तथा गब्बर पर्वत के मध्य में स्थित है। ज्ञान, योग, साधना एवं मानव निर्माण के माध्यम से राष्ट्र उत्थान की प्रवृतियों का जागरण हो रहा है। इनमें पुस्तकालय, चिकित्सालय, आयुर्वेद, सत्संग भवन, ध्यान भवन, आवास निवास, संस्कार शाला, प्रशिक्षण केन्द्र, गौशाला और आयुर्वेद उद्यान का निर्माण किया गया है। यह वर्तमान युग में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने का एक सद्

प्रयास है। इस के अनुयायी गांव गांव जाकर प्रचार प्रसार करते हैं।

***मांगलय वन*** — मांगलय वन एक लघु वाटिका है। यहां पर १२ राशियों के आधार पर विभिन्न औषधीय पौधों को विकसित किया गया है। इस में बच्चों को बैठने तथा खेलने का प्रावधान भी किया गया है।

तारंग भाई के साथ यह भ्रमण अच्छा लगा। कल्याण आश्रम द्वारा संचालित वनवासी बन्धुओं के लिए एक प्रेरणा स्पद कार्य है। यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर है। इस होस्टल में २४ विद्यार्थी —५वीं से लेकर १२वीं तक पढ़ाई करते हैं। विद्यार्थी स्थानीय राजकीय विद्यायलयों में पढ़ने के लिए जाते हैं। उनके खाने, रहने तथा पुस्तकों आदि का सारा व्यय वनवासी कल्याण आश्रम करता है। यह धन समाज से आता हैं तथा इन गरीब वनवासी बन्धुओं के लिए शिक्षा क्षेत्र में लगता है। तारंग भाई का कहना था कि आज से १५ वर्ष पूर्व हमारे वनवासी बालकों का स्कूल में जाना कम होता था, परन्तु वर्तमान सरकार द्वारा सभी प्रकार की सुविधाओं का प्रावधान करने तथा समाज में जागरूकता पैदा करने से अब वनवासी बन्धुओं के सारे बच्चे स्कूल में पढ़ने के लिए जाते हैं।

मैंने तारंग भाई से पूछा कि यह सरकार गरीब ग्रामीणों की सहायता किस प्रकार से कर रही है तो तारंग भाई ने बताया कि वनवासी बन्धु जो भी उत्पादन करते हैं उसे सरकार द्वारा नियोजित मूल्य दर के आधार पर बड़ी आसानी से बेचते हैं। इस सुविधा से किसानों को बहुत बड़ा लाभ हुआ है। लोगों की उपज सौंफ, राई, ऐरण्ड, जीरा तथा अनेक ऐसी नगदी फसलें हैं जिन से लोग आत्म निर्भर हुए हैं। दूध को डेयरी तक पहुंचाने की सुविधा है। मैं अपनी इस यात्रा को पूर्ण करके २५जून, २०११ को दोपहर ११ बजे वापिस पालनपुर के लिए चल पड़ा।

१२:३० बजे मैं बी.डी.मोदी विद्या संकुल में पहुंच गया। यह भोजन का समय था। अब तक साधारण सभा में पधारने वाले प्रतिनिधि पधार चुके थे। एक-दूसरे से परिचय का दौर आदि हुआ। ३ बजे बैठक का प्रथम सत्र प्रारम्भ होने वाला था। बी.डी. मोदी विद्या संकुल भव्य इमारतों, विशाल पुस्तकालय तथा सभी सुविधाओं से युक्त एक उच्च शिक्षण संस्थान है। इतिहास की पुस्तकों का यहां पर एक विशाल भण्डार है। ये सारी पुस्तकें इस साधारण सभा में आए प्रतिनिधियों के अवलोकनार्थ रखी गई थी।

साधारण सभा का विधिवत उद्घाटन सांय तीन बजे हुआ। इस उद्घाटन सत्र की अध्यक्षा हेमचन्द्रा विश्व विद्यालय की उपकुलपति प्रो० मूनिक्षा राव ने की। नारियल के छिलके से निर्मित विशेष गणेश की मूर्तियों के साथ विशिष्ट अतिथियों को सम्मानित किया गया। महासचिव ने नांगलोई बैठक में लिए गये निर्णयों को सभा के समक्ष अनुमोदन के लिए रखा।

अध्यक्षीय भाषण में प्रो० राव ने कहा कि जिस समाज को अपने इतिहास की सही जानकारी नहीं होती वह अपने वर्तमान व भविष्य को भी संवार नहीं सकता। इतिहास की जानकारी सभी विषयों को अध्ययन करने वाले को होनी आवश्यक है।

इतिहास का अभिप्राय मात्र युद्धों और शासन तन्त्र से ही नहीं होता। इतिहास उस समाज के सांस्कृतिक, आर्थिक तथा जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालता है। समाज विज्ञान पूरी तरह से इतिहास पर निर्भर करता है। आज की शिक्षा का प्रचलन विविध कोर्सों पर आधारित हो गया है। इसके कारण समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग इतिहास की जानकारी से वंचित हो गया है। हमें इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

इस अवसर पर तीन महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का विमोचन भी हुआ। श्री संजय कुमार जी द्वारा लिखित पुस्तक ''हिन्दुत्व की आत्मा मालवीय जी'', कांग्रेस अंग्रेज भक्ति से राज सत्ता तक प्रो. सतीश मित्तल जी ने तथा नाथ पंथ और भक्ति आन्दोलन डॉ प्रदीप राव व डॉ ओम जी उपाध्याय द्वारा संपादित है।

भारतीय इतिहास संकलन समिति असम प्रान्त के संस्थापक सदस्य योगेन्द्र लाल सरकार का १५ मई, २०११ को देहावसान हुआ है। युग-युगीन ग्वालियर के संयोजक डॉ. मोहन कुमार, ६ मई, २०११ को बिछुड़ गए। दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजलि दी गई। तत्पश्चात बैठक में भिन्न भिन्न प्रान्तों की इकाईयों द्वारा कार्यवृत्त प्रस्तुत किया गया और भिन्न भिन्न कार्यों को सक्रियता से आगे बढ़ाने के सम्बन्ध में विचार विमर्श हुआ जिसमें मुख्य रूप में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ० शिवाजी सिंह का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

सांय ४:३० बजे बैठक सम्पन्न हो गई। मेरा कार्यक्रम मोढेरा का सूर्य मन्दिर देखने जाने का बना। इसके लिए पहले मेहसाणा पंहुचना था। मेहसाणा पालनपुर से बस द्वारा २ घण्टे का मार्ग है।  दिनेश भाई से मेहसाणा रात्रि रहने तथा आगे की योजना का पूरा खाका तैयार कर मैं बस स्टैंड से मेहसाणा  के लिए प्रस्थान कर गया। सांय ६ बजे मैं मेहसाणा के लिए चल पड़ा और रात्रि ८ बजे बस मेहसाणा पहुंच गई। मुझे काशीनाथ भवन में रुकना था। स्थान ढूँढने तथा पहुंचने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। १५ मिनट में मैं पैदल ही काशीनाथ भवन पहुंच गया। निमेश भाई पटेल मुझे मिल गए। उन से १५-२० मिनट बात हुई। उन्हें रात्रि को ही अहमदाबाद से आगे जाना था। मुझे रात्रि में बातचीत करने वाले हेमेन्द्र सिंह राठौर तथा दो अन्य विद्यार्थी मिल गए। उन्होंने अच्छी प्रकार से खाना बनाया तथा हम भोजन कर ही रहे थे कि संदीप भाई आ गए। रात्रि को हम छत्त के ऊपर अपनी खाट विछाकर सो गए। क्योंकि प्रात: ८ बजे तक स्नान आदि सारे कार्य से निवृत्त होकर मोढेरा सूर्य मन्दिर देखने जाना था। मोढेरा मेहसाणा से २५ किलोमीटर की दूरी पर था। प्रात: पार्क में चार—पांच लोगों से मिलना हुआ। मैंने वैसे ही पूछ लिया कि मेहसाणा क्या होता है। रंजन भाई ने कहा, ''मै सयाना बाकी सब मूर्ख।'' मैंने कहा रंजन भाई मैं आपकी बात समझा नहीं। रंजन भाई ने कहा मैं सयाना अर्थात् समझदार। यदि मैं समझदार हुआ तो क्या बाकि सारे मूर्ख ही होंगे। खैर, यह एक मज़ाक है उन्होंने बताया कि ऐसा ही मज़ाक इस बारे में स्वामी राम देव ने किया था। बात मज़ाक में ही रही नामकरण का वास्तविक आधार अज्ञात रहा। रंजन भाई बोले, आप को हमारे

घर चाय पीने चलना है। गुजराती परिवारों में जाने का मेरा मन था ही। संदीप जी और मैं रंजन जी के घर चले गए।

माताजी! बड़े भाई सभी को नमस्कार हुई। पानी पीया तथा रंजन जी ने चाय के लिए बोला। उन्होंने बताया चेतरात जी हिमाचल से आए हैं। यहां एक सभा में आए हुए थे और आगे भ्रमण पर जाना है। रंजन जी ने सामने वाले घर में बाहर निकली महिला को आवाज लगाई। इधर आओ आपके हिमाचल से कोई आए हैं। महिला नीचे उतरी और हमारे सामने आ गई। उन दोनों परिवारों के सम्बन्ध बहुत अच्छे थे। सुमिता वहीं कॉलेज में हिन्दी विषय को पढ़ाती हैं। हिमाचल प्रदेश के जिला हमीरपुर ऊहल क्षेत्र की रहने वाली हैं। उसके पिताजी ने बड़ोदरा में मकान बनाया है। मेहसाणा में उसका अपना मकान है। प्रातः कॉलेज जाने की जल्दी थी तथा उसने शाम के समय घर आने के लिए कहा। मुझे वहां रहना नहीं था, अपने काम पर आगे निकलना था।

मेहसाणा पर गायकवाड़ राजा का शासन रहा है। दूध सागर डैयरी महेसाणा की बहुत बड़ी डैयरी है और अभी भी और विस्तार पा रही है। यह डैयरी दूर-दूर गांव से दूध उठाती है। दूध एकत्र करने की इसकी व्यवस्था बहुत अच्छी है। वर्तमान में जिला न्यायालय राज महल में बना हुआ है।

नाश्ता करने के बाद मैं और संदीप जी मोटर साईकल पर मोढेरा सूर्य मन्दिर देखने के लिए चले गए। यह अहमदाबाद उच्च मार्ग पर पड़ता है। रास्ते में कपास की पौध सड़क के दोनों ओर लहलहा रही थी। नमर्दा नहर बीच में से निकल रही थी। नर्मदा नहर का पानी किसानों के लिए अमृत का काम करता है।

सूर्य मन्दिर को देखने के लिए जहां भारतीय पर्यटकों का तांता लगा रहता हैं वहीं इस वास्तु शिल्प के बेजोड़ नमूने को देखने के लिए विदेशी पर्यटकों की भी भारी संख्या यहां प्रतिवर्ष आती है। राजा भीम देव के शासन काल में मुहम्मद गजनवी ने १००० ई. के आस-पास इस वास्तु शिल्प तथा वैज्ञानिक तकनीक से बने मन्दिर को ऐसी क्षति पहुंचाई कि जिसके बारे में वह धन और शक्ति में चूर आक्रमणकारी कुछ समझ ही नहीं सकता था। गरीश भाई गोस्वामी इस सूर्य मन्दिर में आने वाले पर्यटकों को इस की विविध बखूबियों का बड़ी संजीदगी से वर्णन करते हैं। गरीश भाई ने बताया कि पूरे विश्वभर में १२ सूर्य मन्दिर हैं। कौणार्क उड़ीसा, मार्तण्ड कश्मीर, तथा यह गुजरात में मोढेरा सूर्य मन्दिर विश्व प्रसिद्ध हैं। इस मन्दिर का वास्तु शास्त्र एवं निर्माण कला सृष्टि रचना पर आधारित है। पृथ्वी पर सर्वप्रथम जब वनस्पति हुई तो जल पर कमल खिल उठा। यह मन्दिर कमल पर बना है। इसका प्रथम आधार कमल का है। दूसरी कनि है, तीसरे ग्रह चिन्ह पर आधारित है, ग्रह के बाद गज, गज के बाद मनुष्य हैं मनुष्य के ऊपर कुम्भ, कुम्भ के ऊपर कलश, कलश के बाद राज पद का मंच है। मंच के उपरान्त माची (आसन) है। आसन के बाद देव विराजित हैं और अन्त में शिखर है। दिल्ली में बने अक्षर धाम की निर्माण तकनीक भी इसी मन्दिर से ली गई है। यह शिखर और गुम्बदीय दोनों

शैलियों में बना हुआ है। इस सूर्य मन्दिर में बलुआ पत्थर लगा हुआ है। यह बलुआ पत्थर सूर्य नगर के पास मिलता है।

गरीश भाई गोस्वामी के अनुसार यह इरानियन शैली में बना हुआ है। इरान में उस समय हिन्दू ही थे। वहां के मग ब्राह्मण इस को बनाने वाले थे। यह सूर्य कलैण्डर के आधार पर बारह राशियों में सूर्य कैसे कब जाता है, को दर्शाता है जो इस मन्दिर की विशेषता है। भारतीय विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियाँ किसी न किसी ऐसी विशेष मुद्रा में हैं जो उनकी कार्य व स्थिति का वर्णन करती हैं। सूर्य की प्रतिमा हमें सदैव सीधी खड़ी मिलेगी। सूर्य गति का प्रतीक है; वह रुक नहीं सकता; वह ठहर नहीं सकता वह सदैव गतिमान है। खड़ा है; तैयार है, जूते लगाए हुए है। यहां भी सभी कोणों पर सूर्य सीधा खड़ा दिखाया गया है।

सूर्य मन्दिर के सामने बना सरोवर अपनी त्रिकोणीय ज्यामिति की ओर संकेत करता है। सरोवर के नीचे से ऊपर तक तथा चारों दिशाओं के मन्दिर आदि सारा निर्माण एक त्रिभुज आधारित संरचना को दिखाता है। इसका विहंगम दृश्य किसी उच्च विचार व चिन्तन की ओर संकेत करता है। यही नहीं जब सामने से हम मन्दिर से नीचे सरोवर के लिए उतरते हैं तो भी सीढ़ियाँ उसी प्रकार विपरीत दिशा में त्रिकोणीय विधि से नीचे समापन की ओर बढ़ती है।

सूर्य मन्दिर की निर्माण शैली में यह बात भी देखने में आई कि इसमें लगा पत्थर जोड़ रहित है। उसमें किसी प्रकार का लेप व बाह्य जुड़ाव नहीं है। यह पुरातात्त्विक अध्ययन का एक अद्भुत नमूना है। सूर्य मन्दिर के प्रवेश द्वार के साथ ही पूर्व दिशा में महादेव का मन्दिर है। उसमें प्राचीन शिवलिंग स्थापित है। मन्दिर के बाहर प्रवेश द्वार के दोनों ओर खुले हरे-भरे मैदान हैं। जिसके किनारे पर विविध प्रकार के पेड़ तथा फूल लगाए गए हैं। हिमाचल प्रदेश के ऊना जिला का वहां एक माली है। जो लगातार प्रात: से सायं तक इन पौधों की सेवा करता है। गरीश भाई के अनुसार इसे सरकारी समय से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह अपना पूरा समय इसकी साज-सज्जा में लगाता है। हमारे से बात करते समय भी उसने एक क्षण को भी अपना काम बन्द नहीं किया। वह हमारी बात का उत्तर भी देता गया और काम भी करता गया। इसी प्रकार गरीश भाई गौतम भी यहां आने वाले पर्यटकों के लिए समर्पित हैं। उसे अनेक अच्छी-अच्छी बड़ी टूर्ज-एण्ड-ट्रैवलज कम्पनियों के निवेदन काम करने के लिए आए पर उसे वहीं आने वाले पर्यटकों से मिलने वाले सहयोग में सन्तुष्टि है। मेरा गुजारा अच्छे में होता है। मुझे यहां कोई धन का अभाव नहीं है। लगातार प्रात: से सांय तक मेरा काम चलता रहता है।

***बहराची माता —*** बहराची माता ५२ शक्तिपीठों में से एक हैं। यह मोढ़ेरा सूर्य मन्दिर से १० कि.मी. की दूरी पर है। यहां पर माता का स्कन्ध (मुड्डा) गिरा था। यह स्थान मुस्लिम आक्रान्ताओं से ध्वस्त होने से बच गया था। कहा जाता है कि अलाउद्दीन खिलजी जब यहां पर मन्दिर का ध्वंस करने के लिए आया था उस समय माता का चमत्कार हो गया।

रात को जो मुर्गा अलाउद्दीन ने खाया था वह प्रात: ज्यों का त्यों जीवित निकल गया। इस से वह भयभीत हो गया। उसने माता से क्षमा मांगी और इस माता के स्थान को विध्वंस किये बिना ही आगे चला गया। माँ मुर्गे की सवारी पर है। यहां भी यही माना जाता है कि माता सात दिनों में अलग-अलग जानवरों की दिन के अनुसार सवारी करती हैं। माता यहां आन्नदमयी हैं। कहा जाता है कि राजा गायक वाड़ को कैंसर हो गया था। उसने माता की मन्नत की और थोड़े ही दिनों में ठीक हो गया। राजा ने प्रसन्न होकर यहां भव्य मन्दिर का निर्माण किया। यह मन्दिर गुजरात सरकार के नियन्त्रणाधीन है। इसमें नव निर्माण चला हुआ है। अन्य मन्दिरों की तरह यहां चित्र लेना मना है। यहां पर बाला यन्त्र की पूजा होती है। सरकार ने यहां पर पुजारियों को सेवा में रखा हुआ है जो समय के अनुसार माता की पूजा अर्चना करते हैं।

दोपहर का भोजन हमने एक स्वर्ण निर्माणकार श्री अशोक भाई के घर पर किया। उन्हें हमारे पहुंचने की जानकारी संदीप जी ने पूर्व में ही दे दी थी। घर में तीन भाईयों का परिवार संयुक्त है। परिवार में खुशहाली है तथा यहां पर गुजराती पकवान खाने का आनन्द आया। दही और चीनी मिला खट्टा-मीठा पदार्थ मिला। चपातियाँ भी दो प्रकार की थीं। एक इस प्रकार की चपाती जिसमें घीया अथवा कुछ और मिलाया जाता है। मिष्ठान तथा आलू की सब्जी तथा खट्टी-मीठी दाल खाई। एक घण्टा हम वहां रूके। परिवार के सभी सदस्य मिलनसार तथा जानकारी प्राप्त करने में रुचि रखने वाले थे। गुजराती लोग स्वयं भी घूमने—फिरने में उत्साह दिखाते हैं। नवम्बर मास में शिमला आने की बात कर रहे थे।

***बहराची माता से पाटन —*** सन्दीप भाई बहराची माता से वापिस मेहसाणा के लिए आए और मैं बस द्वारा पाटन के लिए चला। यह कोई डेढ़ घण्टे का सफर था। अब तक मैं कुछ थक भी चुका था। बस में अच्छी तरह से विश्राम हो गया। पाटन में मुझे जीगर भाई मिलने वाले थे। जीगर भाई कैमिस्ट्री सरकारी स्कूल में पढ़ाते हैं। उन्होंने पहले दिन ही मुझे पाटन घुमाने का वायदा किया था। पाटन में मुझे गायत्री मन्दिर के पास उतरना था। ठीक गायत्री मन्दिर के सामने जीगर भाई मुझे मिल गए। मैंने स्नान किया तथा थोड़े ही समय के अन्दर मैं तैयार हो गया। हमें सबसे पहले रानी की वाव देखने जाना था। रानी की वाव शहर से ५ कि.मी. दूरी पर थी। इसलिए हमने बाजार से टैंपू ले लिया। रानी की वाव का इतिहास वहां मुख्य द्वार पर लगा हुआ है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग ने इसे संरक्षित कर रखा है। चारों ओर से ऊँची दीवारों द्वारा बन्द किया हुआ है। अन्दर हरे-भरे घास का खुला मैदान है तथा स्थान-स्थान पर नीम के ऊँचे-बड़े पेड़ हैं। वाव तक पहुंचने के लिए पक्का पथ बना हुआ है। सैलानियों के बैठने के लिए पक्की कुर्सियां लगी हुई है। हमने वहां मोर का मोहक नृत्य देखा। एक महिला वहां पर एक डिब्बे में नीम के पेड़ से गिरे हुए बीज (फल) इकट्ठा कर रही थी। मैंने जीगर भाई को कहा कि इस महिला से पूछो कि यह नीम के गिरे हुए फल किस काम आते हैं। जीगर भाई ने महिला से पूछा, तो वह कहने लगी कि

यह बिकते हैं। इसका तेल बनता है। जो अनेक दवाईयों में काम आता है। मुझे यह सुनकर अच्छा लगा। हमारे यहां ऐसा नहीं है, क्योंकि यहां नीम होता ही कम है। नीम गर्म क्षेत्र का वृक्ष है। हां हमने अपने शोध संस्थान नेरी में शुद्ध हवा के लिए दो नीम के वृक्ष लगाए हुए हैं। इन दोनों की उमर ३ वर्ष है। एक वृक्ष माननीय स्वर्गीय ठाकुर राम सिंह जी के हाथों लगवाया था।

रानी की वाव अत्यन्त सुन्दर एवं बहुमंज़िली है जो पूरी जमीन के अन्दर बनी हुई है। वाव में नीचे उतरने के लिए सीढ़ियां बनी हैं। यह चरण बद्ध ढंग से नीचे गहरे में उतरती हैं। सीढ़ियों से नीचे उतरते हुए अनेक देवी देवताओं की पाषाण मूर्तियाँ दीखती हैं। जिनमें भगवान विष्णु शेष शैय्या पर विराजमान हैं। शिव नृत्य मुद्रा में हैं। पार्वती तथा स्वर्ग लोक की देवियाँ, अप्सराएँ हैं। सृष्टि का पूर्ण विचार है। पाताल लोक से वराह भगवान पृथ्वी को अपने मुख पर उठाए हुए हैं। पृथ्वी देवी रूप में हैं। हनुमान, सूर्य, वरुण आदि कई देवताओं की मूर्तियाँ हैं।

पुरातत्व विभाग द्वारा वहां दिये गए इतिहास के अनुसार इस भव्य वाव का निर्माण राजा भीम देव (१०२२–११६३ ई.) की रानी उदयवती ने ११वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थाश में करवाया था। भीम देव प्रथम अन्हिलवाड़ पाटन के संलोकी वंश के संस्थापक मूल राज के पुत्र थे।

इस वाव के पश्चिम छोर पर एक कुआं है जो ६४ मीटर लम्बा, २० मीटर चौड़ा और २७ मीटर गहरा है। इस वाव में स्तम्भ युक्त बहुमंजिला कुआँ और अतिरिक्त पानी जमा करने हेतु बड़ा सा कुण्ड है।

वाव की वास्तुगत विशेषता एवं चारुता की झलक इस की सुन्दर नक्काशियों में दिखाई देती है। वाव की दीवारें महिषासुरमर्दिनी, पार्वती और शिव, भैरव, गणेश, सूर्य, कुवेर, लक्ष्मी नारायण, अष्ट दिक्पाल, एवं अन्य मूर्तियों से अलंकृत हैं। अप्सरा, नाग कन्या, योगिनी आदि नारी प्रतिभाओं का कई मुद्राओं में चित्रण है।

***सहस्र लिंग पाटर –*** रानी की वाव से डेढ़ कि.मी. की दूरी पर सहस्र लिंग पाटर है। यहां पर १००८ लिगों कि स्थापना सिद्ध राजा जय सिंह, (१०९१–११४४) ने की थी। यह सहस्र लिंग अपनी विशालता तथा जल संग्रहण की दृष्टि से गुजरात में प्रसिद्ध है।

***पाटन का पटोला –*** पाटन का शान्त, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा सौन्दर्यपूर्ण स्थान देखकर यहां की विश्व प्रसिद्ध पटोला हस्त कला को देखा। इस हस्त कला में साड़ी का मूल्य डेढ़ लाख से आठ लाख तक है। आज यह कार्य केवल दो ही परिवार करते हैं। जीगर भाई ने बताया कि इस विश्व प्रसिद्ध शिल्प धरोहर को वे अपने परिवार से आगे दूसरों को नहीं देते।

अत्याधुनिक मशीनें, कम्प्यूटर आदि तकनीकियाँ पटोले के निर्माण में विफल है क्योंकि पटोले के अन्दर और बाहर का किनारा एक सा होता है। किसी भी ओर से साड़ी को पहन लो, दोनों ओर एक सा होता है। ऐसी कोई भी मशीन वर्तमान में निर्मित

नहीं हुई है। वहां से मिले पत्रक के आधार पर १९७०-१९८० के मध्य दुनिया की बड़ी बड़ी टैक्सटाईल मिलों ने इसको बनाने का प्रयास किया। वे विफल हो गये। अहमदाबाद की प्रसिद्ध Calico मिल ने Atira Research Institute द्वारा अनुसंधान करवाया जो अन्ततः विफल रहे। दुनिया भर की टैक्सटाईल मिलों के जानकार जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीटरज़लैण्ड आदि विकसित देशों के उद्यमी इस शिल्प को देखकर दंग हैं।

***पटोला का अर्थ —*** पटोला सिल्क का कपड़ा है। पटोला शब्द सिल्क के पास शब्द से आया है। ७००ए.डी. में सिल्क को पाट कहा जाता था। गुजरात के विद्वान पण्डित के०के० शास्त्री का कहना है कि पटाला शब्द संस्कृत के ''पाटकलम्'' से लिया गया है। यह कपड़ा चीन से आयात किया जाता था। जो चिनपट और चायनाकुश के नाम से जाना जाता था। जैन धर्मग्रन्थ कल्प सूत्र में सालवी जाति द्वारा निर्मित पटोले का वर्णन २००० वर्ष पूर्व हुआ है।

इतिहास में उल्लेख है कि राजा कुमार पाल ने ११७५ ईस्वी में साल्वी परिवारों को पाटन में बसाया था। राजा कुमार पाल प्रतिदिन नया पटोला पूजा के लिए प्रयोग करता था। पूर्व में प्रयोग किया हुआ पटोला राजा पूजा में शुभ नहीं मानता था। इसलिए प्रतिदिन नया पटोला चाहिए होता था। पटोले के निर्माण में भी बहुत समय लगता था। इस बात को ध्यान में रखकर राजा ने ७०० परिवारों को इसी कार्य के लिए पाटन में बसाया था। इन परिवारों को बसाने से पूर्व राजा दक्षिण भारत के औरंगाबाद के मुगीपटन जो जलना में स्थित है से मंगवाता था। जलना का राजा अपने प्रयोग किये हुए पटोले को निर्यात करता था। राजा कुमार पाल ने जलना के राजा को परास्त किया तथा वहां से सालवी शिल्पियों को अपने पाटन में बसाया। ये सावली दिगम्बर जैन थे। यहां के राजा कर्मपाल ने इन्हें श्वेताम्भ्बरी में परिवर्तित कर दिया।

कहा जाता है कि जावा, सुमात्रा, इण्डोनशिया, वाली आदि अनेक देशों में पटोले को पवित्र और सुख-सम्पदा प्रदान करने वाला माना जाता है। इसलिए इसका एक टुकड़ा अपने तकिये के नीचे तथा पूजा स्थल पर रखा जाता है।

पटोले के भिन्न डिजाईन हैं, जैसे — नारी कुंजर, रतन चौक, नवरतना, वोरोगाजी, छावड़ी भाट, चौखट भाट चन्दाभार, पान भाट, फूलभाट, लेहरिया भाट, तारालिया भाट, भूटा भाट, सरवारिया भाट, आदि-आदि। पटोला से साड़ी, रूमाल, मेज-कपड़ा, दुपट्टा, दीवार-कपड़ा और शालों आदि का निर्माण होता है। इसमें प्राकृतिक तथा रासायनिक दोनों प्रकार के रंगों का प्रयोग होता है।

मुझे रात जीगर भाई को छोड़ पालनपुर कौशिक भाई मोदी के पास पहुंचना था। कौशिक भाई से मैं पहले कभी नहीं मिला था। वह जीगर भाई का साडू है। जिगर भाई ने कहा वह आपको गुजरात के बारे में अच्छा बता सकते हैं। जीगर भाई ने कौशिक भाई को दूरभाष पर मेरे बारे में पूरी जानकारी दे दी।

मैं लगभग सात बजे वहां से बस में बैठ गया और ९:१५ बजे पर पालनपुर पहुंच गया। बस स्टैंड से मैंने कौशिक भाई को फोन किया और वह पाँच मिनट के अन्दर अपने स्कूटर पर बस स्टैंड पहुंच गए। उन्होंने मुझे लिया और हम एक मन्दिर के पास पहुंचे। अपने दो मित्रों को मुझसे मिलाने के लिए बुलाया था। परिचय हुआ उनमें से एक

प्रापर्टी डीलर था। वह एक उलझन में था। मुझ से मिला परन्तु उसका ध्यान अपने उस झगड़े वाली जमीन पर था जिसका अभी तक कोई समाधान नहीं हुआ था।

मैंने सहज ही कहा भाई यह कोई नई बात नहीं है। ठेकेदार और प्रापर्टी डीलर हमेशा किसी न किसी मसले में उलझे ही रहते हैं। उसके बाद हम थोड़ी देर उस मन्दिर में घूमे तथा जल्द ही घर आ गए।

कौशिक भाई का दूसरी मंजिल में किराया का मकान है। पत्नी सरकारी स्कूल में है। स्वयं एक सरकारी शिक्षण संस्थान में गुजराती भाषा के प्राध्यापक थे। गुजरात प्रशासनिक सेवा में आने के कारण तहसीलदार के पद पर नियुक्ति हो गई है। हमारी कोई आधे घण्टे चर्चा हुई। बहुत साफ आदमी देश, धर्म के काम करने वाले आदमी। सेवा धर्म कूट-कूट कर भर रखा है। इतिहास का उन्हें अच्छा ज्ञान है।

हमें चर्चा करते करते १० बज गए। पत्नी ने भोजन के लिए बुलाया। हम सब साथ भोजन करने बैठ गए। कौशिक भाई की इकलौती पुत्री गुजराती भाषा के सरकारी स्कूल में पढ़ती है। क्या पैसे की कमी है? नहीं। क्या मातृ भाषा उच्च विचार, संस्कार देने में अक्षम है? नहीं। अग्रेंजियत का भूत भारत में सिर चढ़ कर बोल रहा है। सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे भारत के गरीब परिवार के बच्चे हैं। कौशिक भाई जैसे शुद्ध विचारों के लोगों का समाज में अभाव है। भाषा का कोई विरोध नहीं है, विरोध अंग्रेजी मानसिकता का है। ऐसे अनेक विषयों पर चर्चा करते हुए हम रात्रि १२:३० बजे के बाद ही सो गये। अगले दिन मांऊट आबू जाने का कार्यक्रम तय था। प्रात: ५:३० बजे उठ कर स्नान किया, एक चाय का कप पिया और दोनों बस स्टैंड आ गए। माऊंट आबू के लिए बस ६ .४५ पर थी। आधा घंटा चर्चा करने के उपरान्त मैंने कौशिक भाई को जाने को कहा। उन्हें अपने कार्यालय के लिए तैयार होना था। मुझे माउंट आबू के लिए बस सीधी मिल गई।

बस ठीक ६:४५ पर चलना प्रारम्भ हुई। बस धीरे-धीरे सवारियों से भरती गई। अमीरगढ़ पोस्ट पर गुजरात और राजस्थान की सीमा एक दूसरे को जोड़ती है। यह आबू रोड़ से लगभग ९ कि.मी. था। रास्ते में जयवीर बाबा मन्दिर, दादू दयाल वनवासी कल्याण आश्रम केन्द्र, बंजारा कॉलोनी, बाबा राम देव पेट्रोल पम्प, राजकीय जनजातीय आवासीय विद्यालय, शान्तिधाम आदि संस्थान मिले। आबू रोड़ पर बस ८:४५ मिनट पर रुकी। यहां से माऊँट आबू २८ कि.मी. की दूरी पर था।

९ बजे के लगभग हमारी बस चल पड़ी। धीरे-धीरे हम पहाड़ों की ओर बढ़ने लगे। वहां का सारा जंगल बन विभाग द्वारा संरक्षित है। पशु-पक्षियों को मारने पर प्रतिबन्ध है। ऊँचाई पर चढ़ते हुए कुछ हरियाली दिखाई देने लगी। १० बजे हमारी बस मांऊट आबू पहुंच गई। अब तक वह बस निकल चुकी थी जो सभी धार्मिक और ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण मात्र १२० रुपये में करवाती है। वह प्रात: ९:३०पर निकल जाती हैं तथा शाम ४:३० पर सभी धार्मिक और ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण करते हुए पुन: माऊंट आबू बस स्टैंड पहुंचती है। खैर मैंने जीप वाले के साथ निकट के स्थलों का भ्रमण करने का

मन बना लिया था। ५० वर्ष की आयु का अयूबखान जीप वाले से मेरी बात हुई। उसने ५०० रुपये लेने की बात की। मैं सहमत हो गया। मुझे वह आदमी अच्छा लगा। बिना किसी लाग लपेट से उसने मुझे सही सही बता दिया।

अर्बुदाचल पर्वत (माऊंट आबू) भारत के प्राचीन ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों में से एक है। इस का वर्णन स्कन्ध पुराण में अर्बुद खण्ड के रूप में हुआ है। ऋषि मुनियों की तपो भूमि आबू पर्वत की प्राकृतिक छटा और सौन्दर्य राजस्थान के सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक जीवन में चार चांद लगा देते हैं।

आबू पर्वत अपने वन्य सौन्दर्य और जंगली जानवरों तथा पक्षियों के लिए भी प्रसिद्ध है। बांस, आम, करोंदे, ऑक, कनैर, चम्पा, चमेली आदि के वृक्ष एवं फल-फूल यहां के वन्य प्राणियों का आश्रय एवं जीवन है। आबू चम्पा और चमेली के लिए विशेष प्रसिद्ध है। जंगली जानवरों में चीते, भेड़िए, लोमड़ी, तेंदुआ आदि बहुतायत में मिलते हैं। यह राजस्थान वन विभाग द्वारा संरक्षित है।

पुराणों में अर्बुद पर्वत को हिमालय का पुत्र माना गया है। आबू पर्वत धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहां पर हर कोने पर कोई न कोई मन्दिर अथवा आस्था स्थल है जिसका अपना एक विशिष्ट इतिहास व स्थान है। इन स्थलों में प्रमुख गौमुख (वशिष्ट आश्रम), नक्की तालाब, श्री हनुमान मन्दिर, गणेश टेकरी, श्री रघुनाथ जी मन्दिर, श्री दुलेश्वर महादेव मन्दिर, श्री बिहारी जी मन्दिर, शंकर मठ मन्दिर, नील कण्ठ महादेव मन्दिर, आग्नेश्वर महादेव मन्दिर, श्री अर्बुदा देवी (अधर देवी) मन्दिर, श्री सोमनाथ महादेव, सन्त सरोवर, कन्याकुमारी मन्दिर, देलबाड़ा, जैन मन्दिर, श्री अचलेश्वर महादेव मन्दिर, अचलगढ़, गुरु दत्तात्रेय मन्दिर, गुरु शिखर, भारत माता मन्दिर तथा ब्रह्मकुमारी विश्व विद्यालय विशेष स्थान रखते हैं। इसके अतिरिक्त भी अनेक छोटे-छोटे मन्दिर हैं। इस भ्रमण स्थली पर प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन तक तपस्या करने की प्रथा चली आई है। ऋषि वशिष्ट, गौतम ऋषि तथा वर्तमान भारत के प्राण स्वामी विवेकानन्द ने भी यहां नाको झील के किनारे एक गुफा में तपस्या की थी। गुरु दत्तात्रेय की माता अनुसूया व अत्रि ऋषि का मन्दिर भी यहां पर बना हुआ है। गुरु शिखर गुरु दत्तात्रेय की तप स्थली है।

अर्बुदा माता मन्दिर आबू पर्वत का प्रमुख मन्दिर है। इस मन्दिर में जाकर देखा कि यह मन्दिर सारा का सारा चट्टानी गुफा के अन्दर है। वहां चित्र लेना मना है। सारा सामान बाहर बैठे पुजारी अथवा चौकीदार के पास रखना होता है। अन्दर कुछ नहीं ले जा सकते हैं। राम प्रकाश शर्मा आई.पी.एस. के अनुसार यह मन्दिर ५५०० वर्ष पुराना हैं स्कन्द पुराण के अर्बुद खण्ड में कात्यायनी माहात्म्य के नाम से अर्बुदा जी का वर्णन महर्षि वेदव्यास जी ने किया है। कहते है कि यहां माँ पार्वती जी के अधर गिरे थे। इसलिए इस पीठ को अधर देवी पीठ भी कहते हैं। पुजारी जी का घर भी चट्टान के नीचे है। यहां एक बहुत ही दिलचस्प बात हुई। एक मुस्लिम परिवार कलकत्ता से भ्रमण पर आया हुआ था। वह मुख्य गुफा की ओर से अन्दर जाने के बजाए बाहर निकलने वाले स्थान पर खड़ा

था। चार–पाँच महिलाएँ भी उसके साथ थीं। मैंने उसका नाम पूछा, अजीम नाम बताया। मैंने कहा, ''क्या आपको मन्दिर के अन्दर नहीं जाने दे रहे हैं? ऐसी बात नहीं है। वह कुछ संकोच में था। मैं उन को मुख्य द्वार पर लाया, वहां से अन्दर जाने को कहा, वे सभी माता के दर्शन कर बाहर आए। अब उनके चेहरों पर खुशी का भाव था। मैं अपने चित्र लेने में व्यस्त था।

यहां माता की मूर्ति काले पत्थर में है। पुजारियों की एक ही परिवार की आठवीं पीढ़ी पूजा का काम कर रही है। चतुर्दशी चैत्र शुक्ल माता का प्राक्ट्य दिवस हैं इसलिए उस दिन बड़ा मेला लगता है।

मन्दिर से उतरते समय वहां के एक स्थानीय दुकानदार गणपत लाल से भेंट हो गई। मैंने उन्हें पहले माता के मन्दिर के अन्दर बैठे हुए देखा था। मैंने उन से परिचय कर लिया। पहले मैं उन्हें पुजारी ही समझ रहा था। पौड़ियां उतरते–उतरते हमारी बातचीत होने लगी। मैंने उनसे एक सरल सा प्रश्न किया। माउंट आबू की विशेषता क्या है? उसका उत्तर था, '' मुझे तो यहां पर ठण्डी–ठण्डी हवा का एहसास होता है। दूसरे मैं माता का भक्त हूँ। अपने धन्धे पानी से जो समय निकलता है उसे यहां माता की सेवा में लगाता हूँ। यहां भी हम कुछ न कुछ कमाते ही हैं।

अर्बुदा मां मन्दिर के बाद जैन मन्दिर में जाना हुआ। अजीम भाई से मेरी पुनः जैन मन्दिर में भेंट हो गई। अजीम भाई ने कहा, ''हम तो यहां शान्ति प्राप्त करने के लिए आए हैं।'' मैंने कहा, ''क्या अजीम भाई शान्ति प्राप्त हो रही है?'' हां, हां अच्छा लग रहा है। वहां पर अन्दर स्थाई गाईड थे। बाहर सूचना लगी थी, कोई भी महिला जिन्हें मासिक धर्म आया हो वह कृपया मन्दिर में न जाए। हमारे पहाड़ों में भी यह परम्परा कायम है कि मासिक धर्म काल में मन्दिर आदि धर्म स्थल में महिलाएं नहीं जाती। जैन मन्दिर की शिल्प कला अत्यन्त भव्य है जो दर्शको को भाव विभोर कर देती है। यहां प्रजापति ब्रह्मकुमारी विश्वविद्यालय का भी भ्रमण किया जो आबू का विशिष्ट आकर्षण है। इसकी प्रसिद्धि विश्व भर में है। एक नये दृष्टिकोण और व्याख्या के साथ भारतीय मूल्यों के पोषण में प्रजापति ब्रह्मकुमारी का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

भोजन करने के उपरान्त मैं नक्की झील पर आ गया। नक्की झील का इतिहास भी बड़ा रोचक है। नक्की झील अर्थत् नाखुन से खोदी गई झील। किसी एक परिवार में एक सुन्दर कन्या थी। वह परमार राजा को पसन्द आ गई। वह उससे शादी करना चाहता था। इस बात का प्रस्ताव जब उस लड़की के परिवार में गया तो लड़की की माँ ने एक प्रस्ताव रखा यदि तू प्रातः होने से पूर्व अपने नाखुनों से यहां एक झील खोद देखा तो लड़की का विवाह तेरे से होगा। वह सारी रात अपने नाखुनों से जगह खोदता गया और प्रातः होने से पूर्व एक झील ने आकार ले लिया। महिला आश्चर्य चकित हो गई। वह लड़की का विवाह उससे नहीं करना चाहती थी। वह महिला तान्त्रिक थी। उसने राजा को मुर्गा बना दिया और स्वयं बिल्ली बन गई। बिल्ली बनकर वह राजा को खा गई। राजा रहा

नहीं, विवाह हुआ नहीं, लेकिन इस बहाने नक्की झील बना गई, जो अब भी है।

मैं अपना भ्रमण पूरा करके झील के किन्नारे बने उद्यान में आ गया। उद्यान के साथ बने रैस्टोरेंट पर झील का मनोरम दृश्य देखने में मस्त हो गया। कई लोग अपनी गर्मी की आग को बुझाने के लिए झील के किनारे पर स्नान कर रहे थे। कुछ दम्पत्ति उन्मुक्त भाव से झील में चलने वाली नाव का लुत्फ उठा रहे थे।

रेस्टोरैंट में आज बिजली नहीं थी। इसलिए वे अपने ग्राहकों को उनकी मनपसन्द पकवान देने में असमर्थ हो रहे थे। मैंने कॉफी मांगी। एक बार वेटर ठण्डी कॉफी ले आया। मैंने वापस कर दी। काफी देर तक वह दुबारा कॉफी लाया ही नहीं। मैं भी आराम के मूड़ में था। फिर पुन: मैंने उसे काफी लाने को कहा। फिर गर्म कॉफी आई। मैं वहां बैठकर लिख भी रहा था। रैस्टोरेंट का मालिक आया और उसने २० रुपये मांगे। मैंने उसे २० रुपये दिये। फिर वह बोला बाबू जी ऊपर लैंटर पर खुली जगह है। वहां कुसी लगी हुई है। एकान्त है। वहां जाकर लिखो। अब तक बिजली आ चुकी थी। उसके ग्राहक आने लगे थे। मैंने अपना सामान उठाया और छत पर चला गया। वहां काफी कुर्सियाँ लगी हुई थीं। थोड़ी देर में वहां टहलता रहा फिर बस स्टैंड की ओर चल पड़ा। मुझे आबू रोड़ जाना था। ५:३० पर दो बसें आबू रोड़ से जाने वाली थीं। जिस बस में मैं प्रात: आया था उसी बस में मैं आबू रोड़ के लिए चल पड़ा। आबू रोड़ से ५ किलोमीटर पहले ही प्रजापति ब्रह्मकुमारी संस्थान का बहुत विशाल परिसर है, जिसमें हजारों लोग रहते हैं। मैं वहीं पर उत्तर गया। गेट नम्बर आठ से वहां अन्दर का प्रवेश मिलता है। सब जगह कोई न कोई पूछने वाला है।

एक ब्रह्मकुमार ने मुझे संग्रहालय की ओर बढ़ाया। वह जल्दी ही हमें वहां ले गया जहां पर एक आदर्श जीवन की कल्पना की गई है। वहां विष्णु और लक्ष्मी का साम्राज्य है। वहां सिंहासन पर शिव और पार्वती विराजमान है। मैं वहां पर एक घंटा रहा। मुझे वहां का ध्यान कक्ष अच्छा लगा। परन्तु मेरे पास अधिक समय नहीं था। मैं वहां से टेम्पू में बैठ कर आबू रोड़ रेलवे स्टेशन के लिए आ गया। प्रतीक्षालय में आकर मैंने पानी की बोतल ली और बैठ गया। रात्रि को भोजन करने की इच्छा नहीं थी। इस लिए मैंने अपने थैले से नमकीन और बिस्कुट निकाले और खाने लगा। मेरे सामने ही एक महिला तथा एक व्यक्ति प्रतीक्षालय में नीचे बैठ गये। मुझे उन्हें देख कर बड़ा अजीब सा लगा। मैं उनकी हरकते देखता रहा। वह महिला उस आदमी को अपने पास फटकने नहीं दे रही थी। वह मुंह से कुछ नहीं बोली। आदमी नशे में था। जल्दी ही उन में समझौता हो गया। कुछ ही देर में वह महिला मेरी बगल में बैठ गई। मैं कुछ डरा भी कि वह मेरी बगल में क्यों बैठ गई। उसका वह साथी भी थोड़ी देर में वहीं आ गया। महिला मुस्कराते हुए वहां से निकल गई। वह आदमी वहां बैठा रहा। मैंने उस आदमी से पूछा ,भाई यह महिला तेरी क्या लगती है। वह बोला यह मेरी रिश्तेदार है। साथ के ही गांव की रहने वाली है। मैंने उससे फिर पूछा कि वह तेरी वह क्या लगती है? वह बोला कि वह मेरे रिश्ते की बहन है।

इसने शराब पी रखी है। यह ऐसी ही है। फिर मैं माजरा समझ गया। क्या तूने शराब नहीं पी रखी है? देख तू शराब पी कर घूम रहा है। बाबू जी, आप के पास जरदा है? मैंने कहा,''नहीं! मैं ऐसी चीज नहीं रखता हूं। तो आप मेरे को खरीद दो। मैं अच्छी चीज खरीद सकता हूं, नशे की नहीं। मेरी झाड़ से वह वहां से खिसक लिया, किधर गया कुछ पता नहीं।

मेरी बगल में ही एक युवा लेटा हुआ था। भाई इन का यह रोज का धन्धा है। ये घर में रहते ही नहीं है। गन्दी आदतें पड़ गई है, इसलिए ये घूमते रहते हैं। अनैतिक कार्य करते हैं। मैंने उस युवा से पूछा,'' तुम क्या काम करते हो? युवा बोला, मैं यहीं इस रेलवे स्टेशन पर काम करता हूं। मेरे पिता जी भी यहीं काम करते थे। मैं यहां १२ वर्षों से काम कर रहा हूं। उतने में उसके दोस्त ने उसे आवाज लगाई कि खाना खाने आ जा। उसके दोस्त सामने खाना खा रहे थे। इतनी सी बात के बाद वह वहां से चला गया। मेरी ट्रेन आने का समय हो गया था। इस लिए मुझे विश्राम स्थल से पलेटफार्म न० २ पर जाना था। मैं चला गया। थोड़ी देर वहीं टहलता रहा। वहां पर और भी ट्रेन में चढ़ने वाले यात्री थे। ट्रेन के ९ बजे आते ही यात्री अपने अपने डिब्बे में चढ़ गये। रात का समय था। इसलिए अपनी सीट पर में भी ऊपर सोने चला गया। थोड़ी देर में ही ट्रेन ९:१५ पर चल पड़ी। विचारों में बहता हुआ आराम से अपनी सीट पर तकिया लेकर बैठ गया। मेरे प्रात: उठने से पहले ही मेरे साथ वाली सीटों पर से यात्री निकल चुके थे। इस समय ट्रेन में किसी प्रकार का रश नहीं था। मैं नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर २९ जून, २०११ पूर्व दोपहर ११ बजे उतर गया और बस द्वारा झण्डेवाला, केशव कुंज में आ गया। तीन दिन की इस यात्रा के बाद मुझे लगा कि भोजन के उपरान्त मुझे विश्राम कर लेना चाहिए। १२ बजे झण्डेवाला में भोजन की घंटी बजती हैं। मैं उससे पूर्व पहुंच गया था। इसलिए स्नान तथा भोजन करने के उपरान्त में सो गया।

मुझे दिल्ली में ४ जुलाई तक रूकना था। ४ जुलाई को कृतिरूप संघ दर्शन के विषय में दिल्ली कार्यालय में बैठक होने वाली थी। हिमाचल प्रदेश की ओर से यह कार्य मेरे जिम्मे लगाया गया है। दो दिनों के लिए नेरी जाना और फिर वाापिस आना यह बस आने जाने में ही हो जाएगा। अत: मैं दिल्ली में रूका। इस बीच दिल्ली में नेरी शोध संस्थान से जुड़े  लोग और अन्य भारतविद् विद्वानों से सम्पर्क हुआ जिनमें श्री धीरेन्द्र प्रताप, डॉ. धर्मेन्द्र वर्मा, डा. देवन्द्र स्वरूप, डॉ. शिवाजी सिंह, श्री जे.एन. सिंह, श्री सुरेन्द्र नाथ शर्मा, श्रीमती कल्पना गर्ग, डॉ. हेमेन्द्र राजपूत आदि विद्वानों से उपयोगी विचार विमर्श हुआ।

४ जुलाई प्रात: मैं झण्डेवाला आ गया। ९ बजे से कृतिरूप संघ दर्शन के विषय में हमारी बैठक तय थी। निश्चित समय पर बैठक प्रारम्भ हो गई। प्रदीप जी जम्मू को छोड़ सभी बैठक मै उपस्थित थे। कृतिरूप संघदर्शन के ६ खण्ड प्रकाशित होने वाले हैं। यह कार्य पूरे देश में चल रहा है। उत्तर क्षेत्र जिसमें हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा,

दिल्ली और जम्मू कश्मीर आता है उस क्षेत्र के कार्यकर्ता यहां बुलाए गये थे। श्री नरेन्द्र सहगल जी को क्षेत्र प्रमुख का कार्य दिया गया है। उन्होंने इस सामग्री के विषय में क्षेत्रीय प्रचारक जी की उपस्थित में आगामी कार्ययोजनना पर चर्चा करनी थी। हिमाचल प्रदेश की बैठक हमने बिलासपुर में १७ जुलाई सांय ३ बजे रख ली । सभी विषय १२ बजे तक पूरे हो गये तथा भोजन करने उपरान्त दिल्ली ऊना जनशताब्दी से में चण्डीगढ आ गया। वहां से मैंने अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय सचिव श्री शेर सिंह जी के पास पंचकुला जाना था। रिक्शा लेकर में शेर सिंह के पास चला गया। रात्रि भोजन के उपरान्त पार्क में टहलते हुए सारे कार्य की समीक्षा हुई। ५ जुलाई प्रात: ६ १० की बस से ऊना आ गया। ऊना में कुछ समय रूक कर शाम ७ बजे को में नेरी आ गया। यह यात्रा मेरे लिए एकपंथ दो काज साबित सिद्ध हुई। राष्ट्रीय बैठक के बहाने मुझे पालनपुर और उसके आस पास के जीवन और इतिहास को समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ। गुजरात आज विश्व मानचित्र पर विकसित राज्य के रूप में उभर कर आया है जिसके विकास की चर्चा अमेरिकी संसद में भी गूंजी है उसे निकट से समझने का अवसर मिला।

KCCB

स्थापित -1920

आप का विश्बास + हमारी सेवा

## कांगड़ा केन्द्रीय सहकारी बैंक सीमित

**धर्मशाला (हि.प्र.) दूरभाष 223280, 224969**

**माननीय मुख्यमंत्री प्रो. प्रेमकुमार धूमल जी**

के गतिशील नेतृत्व में उत्तरी भारत के सहकारी क्षेत्र के सर्वोत्तम किसानों, बागवानों, नौजवानों, बुनकर एवं कर्मचारियों के सच्चे व अपने नाबार्ड द्वारा लगातार पांच वर्षों तक पुरस्कृत, भारतीय विकास रत्न अवार्ड 2009, नाबार्ड द्वारा प्रथम दूध गंगा अवार्ड 2010 एवं स्वयं सहायता समूह 2010 के अवार्ड विजेता

**कांगड़ा केन्द्रीय सहकारी बैंक सीमित धर्मशाला (हि०प्र०)**

की ओर से ग्राहकों व शुभचिन्तकों को बधाई एवं शुभकामनाएं

सभी प्रकार की बैंकिंग सुविधाओं के लिए हमारी नजदीक की शाखा में सम्पर्क करें।

हमारी विशेष योजना :– किसानों के लिए फसली ऋण केवल 7% पर

**रसील सिंह मनकोटिया**
**अध्यक्ष**

**संदीप कुमार**
**प्रबन्ध निदेशक**

# श्रद्धेय स्वर्गीय ठाकुर रामसिंह जी की पुण्यतिथि एवं श्रद्धाञ्जली

भाद्रपद प्रविष्टे २२, कलियुगाब्द ५११३ (ईस्वी सन् ७ सितम्बर, २०११) को शोध संस्थान नेरी में श्रद्धेय स्वर्गीय ठाकुर रामसिंह जी की प्रथम पुण्यतिथि का आयोजन किया गया।

सर्वप्रथम उपस्थित महानुभावों ने उनके चित्र पर श्रद्धासुमन अर्पित किए। इस अवसर पर निदेशक मण्डल एवं वैचारिक पक्ष के सभी सदस्यों तथा विभिन्न स्थानों से पधारे आगन्तुकों ने स्व० ठाकुर जी के ध्येय पथ तथा उनके द्वारा किए गए कार्यों का स्मरण किया और भावी कार्ययोजनाएँ निर्धारित कीं। दिवंगत आत्मा की शांति तथा संस्थान की कार्यवृद्धि के लिए अनुष्ठान का आयोजन भी किया गया।

***निदेशक मण्डल की बैठक :*** भाद्रपद प्रविष्ठे २१, कलियुगाब्द ५११३ (ईस्वी सन् ६ सितम्बर, २०११) को शोध संस्थान में निदेशक मण्डल के अध्यक्ष श्री विजय मोहन कुमार पुरी जी की अध्यक्षता में निदेशक मण्डल समिति की बैठक का आयोजन हुआ। इस बैठक में संस्थान के कार्य एवं भावी योजनाओं पर विस्तार से चर्चा हुई। संस्थान के कार्य विस्तार की दृष्टि से सभी कार्यकर्ताओं ने अपने बहुमूल्य विचार रखे। बैठक में विचार आया कि ठाकुर जी का पूरा जीवन राष्ट्र कार्य के लिए समर्पित रहा है। वे भारत की युवा पीढ़ी के लिए एक प्रेरणा स्रोत हैं। ठाकुर जी स्वयं एक इतिहास के छात्र रहे हैं परन्तु उनका कहना था कि इतिहास की मूल सोच मुझे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में आने के बाद प्राप्त हुई।

बैठक में विचार आया कि ठाकुर जी के जन्म दिवस को 'इतिहास के प्रेरणा दिवस' के रूप में मनाया जाए। इस अवसर पर इतिहास विषय पर परिचर्चा, लब्ध प्रतिष्ठित इतिहासकारों का सम्मान, भाषण प्रतियोगिताएँ एवं वाद-विवाद प्रतियोगिताओं के कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाए।

***ठाकुर राम सिंह व्याख्यान माला —*** बैठक में यह विचार किया गया कि ठाकुर जी के जीवन्त ऐतिहासिक दृष्टिकोण के मद्देनज़र 'ठाकुर रामसिंह व्याख्यान माला' का आयोजन वर्ष में एक बार किया जाए। इस व्याख्यान माला में विशेषज्ञ विद्वानों के व्याख्यान इस सन्दर्भ में रखे जाएं। यह कार्यक्रम शोध संस्थान के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी आयोजित किये जा सकते हैं।

***वैचारिक पक्ष :*** वैचारिक पक्ष के अन्तर्गत चल रहे कार्यों पर डा० विद्या चन्द ठाकुर जी ने प्रकाश डाला। उन्होंने लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार पर चल रहे कार्य को आगामी ६ मास में पूरा होने की बात कही। 'मार्तण्ड महाराजा संसार चन्द और उनका युग' विषय पर हुए परिसंवाद के शोध पत्रों का संकलन हो चुका है। पुस्तक प्रकाशन के लिए तैयार है। यह कार्य डा० रमेश जी देख रहे हैं।

महाभारत कालीन इतिहास पर डा० हेमेन्द्र राजपूत का कार्य भी पूरा हो गया है। शोध के कुछ बिन्दुओं का सम्पादन अभी अपेक्षित है।

डा० ओम प्रकाश शर्मा जी ने महासुवी व सिरमौरी लोक गाथाओं पर आधारित पुस्तक का प्रकाशन कर दिया है। निदेशक मण्डल शर्मा जी के इस कार्य के लिए बधाई देता है।

***शक्ति बढ़ेगी तो कार्य बढ़ेगा :*** संस्थान के संरक्षक श्री चेतराम जी ने सभी विद्वानों एवं सदस्यों से अपनी शक्ति बढ़ाने को कहा। उन्होंने कहा कि हमें अपने मूल काम पर ध्यान देना चाहिए वही हमारी शक्ति है। जब हमारी शक्ति बढ़ेगी तो कार्य भी बढ़ेगा।

***पुराणों पर कार्ययोजना का सुझाव :*** महन्त सूर्यनाथ जी ने पुराणों पर कार्य करने पर बल दिया। उनका कहना था कि हमारा मूल इतिहास पुराणों में है इसलिए पुराणों पर कार्य अपेक्षित है। सभी का मत था कि स्वर्गीय ठाकुर जी द्वारा दर्शाया गया ध्येयपथ भावी पीढ़ी के लिए मील का पत्थर साबित होगा।